हमारा साहित्य

जे. एंड के.
अकादमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़, जम्मू







हमारा साहित्य

1994

(विशिष्ट व्यक्तित्व अंक)

संपादक

डॉ० उषा व्यास



जे० एंड के० अकादमी ऑफ आर्ट कल्चर एंड
लैंग्वेजिज़, जम्मू



हमारा साहित्य—1994

विशिष्ट व्यक्तित्व अंक मूल्य : 30-50 रुपये

जे० एंड के० अकादमी आफ आर्ट कल्चर एंड लेंग्वेजिज द्वारा प्रकाशित

प्रथम संस्करण—1995

रोहिणी प्रिंटर्ज, कोट किशन चंद, जालंधर शहर द्वारा मुद्रित

Hamara Sahitya 1994

(Prominent Personalities of Jammu)

Edited by : Dr. USHA VYAS

आमुख–

अपने प्रकाशनों की समृद्ध परम्परा में हम कालान्तर से राज्य की कला, संस्कृति तथा साहित्य के रंगा-रंग क्षितिज उद्‌घाटित करते आये हैं। 1994 का 'हमारा साहित्य' भी हमारे उन्हीं प्रयासों का एक अन्य रूपाबंध है।

भारत के मानचित्र पर मणि मुकुट सा सज्जित जम्मू-कश्मीर राज्य का जम्मू प्रांत जहां अपनी भौगोलिक, ऐतिहासिक तथा राजनैतिक स्थिति के कारण महत्वपूर्ण है, वहां इसकी नैसर्गिक मनोहारिता, शौर्य, शिल्प तथा संस्कृति की भी एक अपनी पहचान है। युग प्रवाह में समय ने जम्मू के जन-जीवन पर जो भिन्न-भिन्न छापें छोड़ी हैं उन्हें जम्मू की संस्कृति अपनी अमूल्य धरोहर के रूप में आत्मसात किये हुए है।

विचारों, धर्मों तथा जीवन दृष्टियों के विविध रूपों को एकाकार करते हुए विशिष्ट जीवन मूल्यों का निर्माण करने में यहां के सन्तों, चिन्तकों, दार्शनिकों तथा साहित्य मर्मज्ञों की एक अविस्मरणीय भूमिका रही है। प्रस्तुत अंक में हमने जम्मू की मिट्‌टी से संस्कारित, रोशनी के उन हरकारों के जीवन चित्र संकलित किये हैं जो आजीवन पुरुषार्थ और परमार्थ का समन्वय सेतु बने रहे।

अपने आगामी प्रकाशनों के द्वारा राज्य के अन्य विशिष्ट व्यक्तित्वों से भी पाठकों की पहचान कराने का हमारा अवश्य प्रयास रहेगा।

हमारी आशा है, आपकी लाभान्वितता इसकी सार्थकता को रेखांकन देगी और आपका स्नेहिल सहयोग हमारे साथ बरावर बना रहेगा।

☐ संपादक

हमारा साहित्य—1994

विशिष्ट व्यक्तित्व अंक मूल्य : 30-50 रुपये

जे० एंड के० अकादमी आफ आर्ट कल्चर एंड लैंग्वेजिज द्वारा प्रकाशित

प्रथम संस्करण—1995

रोहिणी प्रिंटर्ज, कोट किशन चंद, जालंधर शहर द्वारा मुद्रित

Hamara Sahitya 1994
(Prominent Personalities of Jammu)
Edited by : Dr. USHA VYAS

आमुख–

अपने प्रकाशनों की समृद्ध परम्परा में हम कालान्तर से राज्य की कला, संस्कृति तथा साहित्य के रंगा-रंग क्षितिज उद्घाटित करते आये हैं। 1994 का 'हमारा साहित्य' भी हमारे उन्हीं प्रयासों का एक अन्य रूपाबंध है।

भारत के मानचित्र पर मणि मुकुट सा सज्जित जम्मू-कश्मीर राज्य का जम्मू प्रांत जहां अपनी भौगोलिक, ऐतिहासिक तथा राजनैतिक स्थिति के कारण महत्वपूर्ण है, वहां इसकी नैसर्गिक मनोहारिता, शौर्य, शिल्प तथा संस्कृति की भी एक अपनी पहचान है। युग प्रवाह में समय ने जम्मू के जन-जीवन पर जो भिन्न-भिन्न छापें छोड़ी हैं उन्हें जम्मू की संस्कृति अपनी अमूल्य धरोहर के रूप में आत्मसात किये हुए है।

विचारों, धर्मों तथा जीवन दृष्टियों के विविध रूपों को एकाकार करते हुए विशिष्ट जीवन मूल्यों का निर्माण करने में यहां के सन्तों, चिन्तकों, दार्शनिकों तथा साहित्य मर्मज्ञों की एक अविस्मरणीय भूमिका रही है। प्रस्तुत अंक में हमने जम्मू की मिट्टी से संस्कारित, रोशनी के उन हरकारों के जीवन चित्र संकलित किये हैं जो आजीवन पुरुषार्थ और परमार्थ का समन्वय सेतु बने रहे।

अपने आगामी प्रकाशनों के द्वारा राज्य के अन्य विशिष्ट व्यक्तित्वों से भी पाठकों की पहचान कराने का हमारा अवश्य प्रयास रहेगा।

हमारी आशा है, आपकी लाभान्वितता इसकी सार्थकता को रेखांकन देगी और आपका स्नेहिल सहयोग हमारे साथ बराबर बना रहेगा।

☐ संपादक

अनुक्रमणिका

डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा

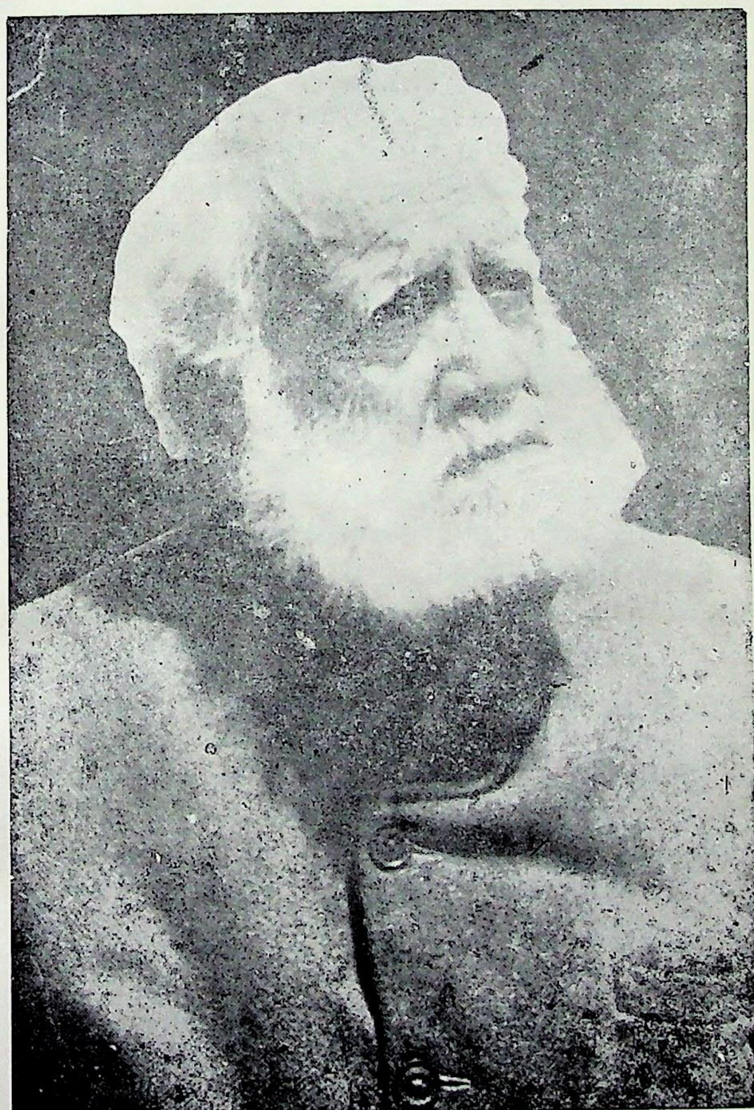
प्रो० रामनाथ शास्त्री

प्रिंस ऑफ वेल्ज़ जम्मू रियासत का सबसे पुराना महाविद्यालय है। दिसम्बर, 1910 को इस कॉलेज की नींव स्व० महाराज प्रताप सिंह ने रखी। रियासत के प्रधानमंत्री बख्शी गुलाम मुहम्मद के काल में इस पुराने शैक्षिक संस्थान के नाम से जुड़ी साम्राज्यवाद की दासता की छाप मिटाने के लिए इसको यह नाम दिया गया—'गवर्नमेंट गांधी मैमोरियल साइंस कॉलेज जम्मू'। परंतु अभी तक इस पुराने महा-विद्यालय के नाम की गूंज शेष है। इस महा-विद्यालय के प्रथम तीस-बत्तीस वर्षों से संबंधित अनगिनत यादों व इस समय के बहुत से महान् शैक्षिक व्यक्तित्वों के चेहरे, अभी भी बहुत से बुजुर्गों के दिलो-दिमाग में सुरक्षित हैं। मैंने स्वयं 1935 ई० से 1938 ई० तक इस संस्था से शिक्षा ग्रहण की व 1944 ई० में इसी महा-विद्यालय में प्रवक्ता के रूप में अपने नये जीवन का आरंभ किया।

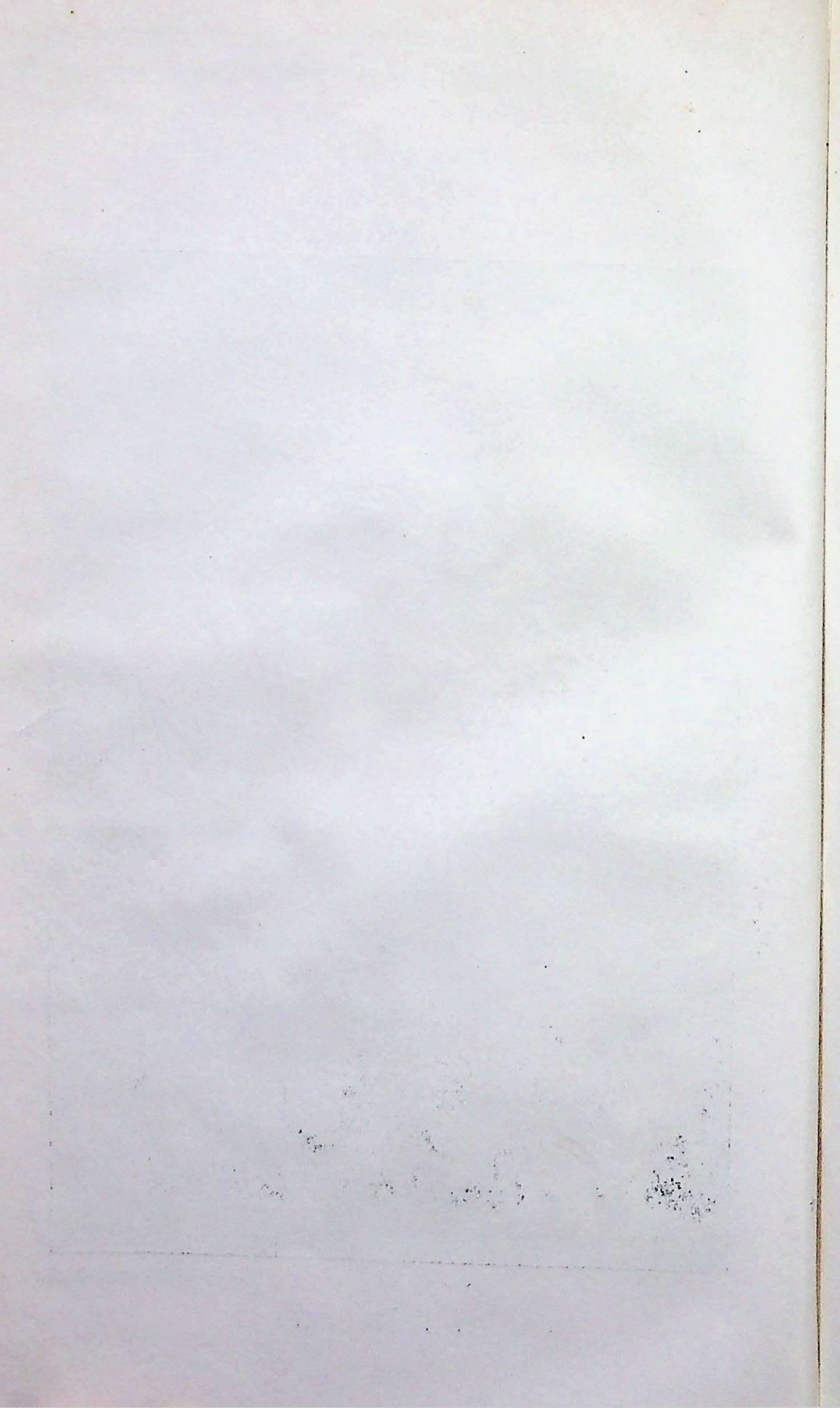
प्रिंस ऑफ वेल्ज़ कॉलेज रियासत का सबसे पुराना महा-विद्यालय तो था ही परंतु इसके साथ ही इसके शैक्षिक स्तर की उत्तरी क्षेत्र के महा-विद्यालयों में, सबसे अधिक लोकप्रियता थी। महाराजा प्रताप सिंह स्वयं तो अधिक पढ़े-लिखे नहीं थे, परंतु उनका इसीलिए हार्दिक अभिनंदन किया जा सकता है कि जहां उन्होंने इस महा-विद्यालय के लिए बढ़िया व सुन्दर भवन बनवाया वहीं समूचे भारत से शिक्षा के क्षेत्र में प्रवीण विद्वानों की सेवाएं प्राप्त कीं। इस महा-विद्यालय से शिक्षित बहुत से बुजुर्ग आज भी इस महा-विद्यालय के उच्च-स्तरीय अध्यापकों का नाम मान व सत्कार से लेते हैं। महा-विद्यालय के कुछेक स्मरणीय व्यक्तित्वों के नाम इस प्रकार हैं: कॉलेज के प्रिंसीपल प्रोफैसर राबसन, प्रोफैसर वांदीना (उप-प्राचार्य), प्रोफैसर कुंडू (गणित), प्रो० बोस

(भू-विज्ञान), प्रो॰ मधीर मलानी (इतिहास), प्रो॰ सेवा राम सूरी (भौतिकी), प्रो॰ माणक चंद खोसला (रसायन विज्ञान), मौलवी हादी (अरबी) व डॉक्टर सिद्धेश्वर वर्मा (संस्कृत) इत्यादि)।

ई॰ 1930 में महा-विद्यालय के प्रवक्ता के लिए रुपए 550/- मात्र का ग्रेड और प्रिंसीपल के लिए एक हज़ार का ग्रेड था। उस सस्ते जमाने में यह वेतन, सुखी जीवन जीने के लिए पर्याप्त था और यह भी सच है कि वे लोग उचित अर्थों में प्राध्यापकों का जीवन जीते थे। उस समय जम्मू शहर का जीवन शांतिमय था। न तो शहर की जनसंख्या अधिक थी और न ही मौजूदा समय में परेशान करने वाले यातायात का शोर था। आम सवारी के लिए उस समय तांगा ही पर्याप्त था। दूर दराज़ जाने के लिए कुछ पुराने प्रकार की कम यात्री लेकर चलने वाली गाड़ियां थीं, जिनके बारे में प्रसिद्ध था कि कुछ मील चलने के उपरांत ही उनके इंजन गर्म हो जाते थे, जिन्हें ठंडा करने के लिए ठंडे पानी के अतिरिक्त थोड़े-थोड़े समय के अंतराल पर आराम करने की भी आवश्यकता पड़ती थी। "धक्का मार, पानी डाल" की श्रेणी के ये वाहन भी उस समय गनीमत ही समझे जाते थे। गरीबी बहुत थी परंतु लोगों में धैर्य व संतुष्टि का वातावरण बना रहता था। शिक्षा भी आम न थी। कॉलेज में पढ़ने वालों की संख्या तो और भी कम थी। यही कारण था कि शिक्षा के प्रति व विद्वानों के प्रति लोगों के हृदयों में बहुत सम्मान था। स्वाभाविक रूप से ऐसे वातावरण में महाविद्यालय में पढ़ाने वाले प्राध्यापकों का समाज में बहुत ऊंचा स्थान था। इन नामी प्राध्यापकों की टीम में डॉ॰ सिद्धेश्वर वर्मा अपनी शैक्षिक प्रवीणता व प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण स्तरीय एवं महत्व-पूर्ण स्थान रखते थे। अन्यों से डॉ॰ सिद्धेश्वर वर्मा का व्यक्तित्व अधिक प्रभावशाली था। वे दूसरों में रहते हुए भी अलग से चिन्हित होते। तीस के दशक में मैं जब इस महा-विद्यालय का विद्यार्थी था तो डॉक्टर साहिब महा-विद्यालय में सम्माननीय स्थान रखते हुए, शिक्षा के रग में रंगे विद्वान पंडित थे। कक्षा में पढ़ाते या कॉलेज-हाल में किसी विषय पर चर्चा करते हुए डॉ॰ वर्मा की आवाज़ से ही पता चल जाता कि वक्ता डॉ॰ सिद्धेश्वर वर्मा ही हैं। उनके पौरुष-मय स्वर में एक विशेष वाल्यूम था। वे जीवन के एक-एक महत्व को मानते हुए चलते थे। डॉक्टर सिद्धेश्वर वर्मा जैसे कॉलेज की समय-सारिणी के पाबंद थे, वैसे ही कॉलेज के बाहर भी वे एक समय-सारणी में रहते थे। प्रत्येक कार्य के लिए समय निर्धारित रहता था। घर में उनका समय विशेषकर भाषा-वैज्ञानिक खोज व अध्ययन में व्यतीत होता था। सैर, भोजन, संपर्क, सोना-जागना अर्थात् प्रत्येक कार्य के लिए समय निर्धारित



डॉ॰ सिद्धेश्वर वर्मा



होता था। कॉलेज में नौकरी के दौरान उनका निवास रघुनाथ मन्दिर के सामने वाली गली में था। शाम के वक्त वे किसी पुस्तक को पढ़ते हुए तवी के पुल तक जाते व वहां घूमते, चक्कर लगाते रहते। आज यह बात असंभव लगती है किंतु जम्मू के उन शांत दिनों में इस प्रकार की सैर में कोई बाधा नहीं होती थी। सैर के वक्त इनके दो-चार शिष्य भी संग रहते और उनकी बातों से लाभान्वित होते। डॉक्टर वर्मा ने अपनी शाम की सैर को अमृत-सेतु की सैर का नाम दे रखा था। कुछ लोग ऐसा भी कहते हैं कि डॉक्टर वर्मा अपना प्रत्येक कार्य इतनी पाबंदी से करते थे कि लोग अपनी घड़ियों का कार्य समय मिला सकते थे।

उन दिनों संस्कृत, फ़ारसी जैसी भाषाओं की शिक्षा-प्राप्ति का माध्यम भी अंग्रेजी था। डॉ० वर्मा को संस्कृत व अंग्रेजी दोनों भाषाओं में दक्षता प्राप्त थी। वे अक्सर विद्यक आख्यानों पर टिप्पणी करते हुए अंग्रेजी का ही प्रयोग करते थे। इन दिनों कॉलेज में 15-20 मिनट का प्रार्थना-पीरियड होता था। यह पीरियड डॉ० वर्मा के लिए ही निर्धारित था। वे प्रतिदिन किसी योग्य विषय पर अंग्रेजी में भाषण करते। इधर घंटी बजी और उधर डॉ० वर्मा हाल में प्रवेश करते ही चरित्र, मानवता, दर्शन इत्यादि विषयों पर बोलने लगते। कॉलेज के कुछ गंभीर व रुचिकर छात्र इस पीरियड में उपस्थित रहते। यह प्रार्थना-पीरियड कॉलेज के जीवन का इक विशेष अंग बन गया था। मेरा अनुमान है कि डॉ० वर्मा के अवकाश ग्रहण करते ही यह परंपरा भी समाप्त हो गयी। इसका कारण यही हो सकता है कि संभवत: कोई अन्य व्यक्तित्व इस परंपरा को जारी रखने में समर्थ न रहा हो। डॉ वर्मा की अभिव्यक्ति, उनकी पहुंच (रेंज), उनकी धारा प्रवाह वक्तृता इत्यादि उनके ही समृद्ध ज्ञान भंडार के परिणाम थे।

डॉ० वर्मा अपने अध्यापन-काल के दौरान एक दंत कथा (ले'जन्ड) बन गए थे। सुनने में आया कि महाविद्यालय में वरिष्ठतम होने के कारण एक बार आपकी प्रिंसीपल-पद की पदोन्नति का प्रस्ताव बना परंतु इन्होंने यह पद स्वीकार नहीं किया। प्राचार्य-पद के दायित्व आपकी शैक्षिक व्यस्तताओं से मेल नहीं खाते थे, हालांकि उस समय प्राध्यापक व प्राचार्य के वेतन में बहुत अंतर था। परंतु डॉ वर्मा के जीवन में इन बातों का कोई आकर्षण नहीं था। वे तो विद्या-मिशनरी थे। उनकी प्रकृति सधुक्कड़ी थी। अपने मिशन (उद्देश्य) को वे कैसे तज देते ? ग्रीष्म-अवकाश के दिनों में डॉ० वर्मा 'कुद्द' चले जाते। वहां लीज़ पर ज़मीन लेकर, उन्होने एक छोटा सा मकान बना रखा था जहां दो-अढ़ाई माह रुकते। इस सुखद परिवेश में भी उनका अधिकांश

समय अध्ययन व भाषाई शोध में ही निकलता। 'कुद्द' में रहते हुए उन्होंने भद्रवाही, भलेसी, रूधारी, जैसी पहाड़ी लोक बोलियों का अध्ययन किया। इन बोलियों को पहली बार किसी भाषा-वैज्ञानिक ने अपने अध्ययन का केन्द्र बनाया था। पहली बार इन बोलियों को ऑल इंडिया ऑरीएंटल कान्फ्रैंस जैसी संस्थाओं में पढ़ा गया। देश की अन्य बोलियों के विशेषज्ञों के लिए नवीन ज्ञान व सामग्री प्राप्त हुई। इस महा-विद्यालय में काम करते हुए आप न केवल भारत में अपितु विदेशों में भी लोकप्रियता प्राप्त कर चुके थे।

डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा का जन्म 3 नवम्बर, 1887 ई० को रावलपिंडी (पाकिस्तान) में हुआ। आपके पिता श्री रामदास नंदा पंजाब पब्लिक वर्कस विभाग में एक बड़े ठेकेदार थे। डॉक्टर वर्मा का नाम पिंडी दास था। ऊंचा कद, सुडौल शरीर, ऊंची, गूंजती व गरजती आवाज़ आदि विशेषताएं आपको अपने पिता से विरासत में मिलीं। यह इनकी माता का प्रभाव था कि स्कूल में उर्दू माध्यम से शिक्षा ग्रहण करके भी घर में हिंदी व संस्कृत भाषा सीखी। घरेलू परिवेश के कारण उनमें धार्मिक साहित्य में रुचि उत्पन्न हुई। उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा सन् 1903 ई० में पास की। पूरे प्रांत में इनको 28वां स्थान मिला। इस परीक्षा के उपरांत वे बीमार हो गए, फलत: उनकी पढ़ाई में दो वर्ष का व्यवधान पड़ा। इसी समय के दौरान उनको संस्कृत की प्रसिद्ध व्याकारण "सिद्धांत कौमुदी" के एक प्रसिद्ध अंग्रेजी अनुवाद को पढ़ने का अवसर मिला। इसे पढ़कर आप संस्कृत भाषा सीखने के लिए उतावले हो उठे। दो वर्ष की बीमारी का यह समय पिंडीदास के जीवन पर गहरा असर छोड़ गया। इस दौरान उन्होंने जो पुस्तकें पढ़ीं, उनके कारण संस्कृत व अंग्रेजी दोनों भाषाओं के प्रति वे अधिकाधिक प्रेरित हुए। बच्चों में भाषाएं सीखने के उत्साह को उस समय असाधारण समझा जाता था। धीरे-धीरे उनकी रुचि चरित्र, दर्शन व भाषाओं से संबंधित विषयों में बढ़ती गयी। सन् 1919 ई० में उन्होंने बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की। प्रांत भर में उनकी 14वीं पोजीशन रही। इसके उपरांत इतिहास में एम० ए० करने के लिए उन्होंने दाखिला ले लिया। उस समय संस्कृत में एम० ए० करने का प्रावधान नहीं था।

कहा जाता है कि एम० ए० की पढ़ाई के दौरान वे प्रत्येक रविवार प्रात: घर से निकल कर किसी एकांत स्थल पर चले जाते व दिन भर वहां अध्ययन करते, थोड़ा आराम करते व सोच के सागर में तैरते शाम को नए बौद्धिक अहसासों के नए सूर्य का आकर्षण लेकर घर वापस आते। जिस युवावस्था में व्यक्ति प्रत्येक प्रभाव को ग्रहण करने की स्थिति में रहता है, उस आयु में आप डॉक्टर केशोदास शास्त्री के बुद्धिजीवी प्रभाव में पूरी तरह आ गए।

डॉक्टर केशोदास शास्त्री की दृष्टि व विचारों में अत्यधिक विशालता थी। समाज के कमजोर वर्ग की सेवा को वे पुण्य मानते थे। नवयुवकों की चारित्रिक-शिक्षा में भी उनको गहरी दिलचस्पी थी। बहुत से नवयुवक उनके पास आते थे और उनके विचारों से प्रभावित होते थे। शास्त्री जी ने पिंडीदास को बहुत प्रभावित किया। पंडित केशोदास ने ही पिंडीदास के स्थान पर उनको सिद्धेश्वर (कमलों का शीर्ष) जैसा प्यारा नाम दिया। एक परिपक्व ज्ञाता ने इनकी काया पलट कर रख दी। अपने गुरु का दिया हुआ नाम ही आपका असली नाम हो गया—सिद्धेश्वर वर्मा।

सन् 1911 में डॉ० वर्मा ने पंजाब विश्वविद्यालय से इतिहास में एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की। इन्हीं दिनों में आपको राजस्थान की एक छोटी सी रियासत "शाहपुर दरबार" में एक अच्छी नौकरी मिल गयी। वहां से राजा सर नाहरसिंह ने उनको अपने प्राईवेट सैक्रेटरी व अपने शहज़ादे के लिए ट्यूटर के रूप में नियुक्त किया। उन्होंने केवल वर्ष भर काम किया क्योंकि वे अनुभव करते थे कि उन्होंने अभी अपनी शिक्षा पूरी करनी है। यहां की नौकरी छोड़कर उन्होंने 1912 ई० में पंजाब विश्वविद्यालय से संस्कृत में ऑनर्ज (शास्त्री) की परीक्षा उत्तीर्ण की। वास्तव में संस्कृत भाषा व साहित्य ने ही उनको नौकरी छोड़ने पर मजबूर किया। अगले वर्ष ही आप हिंदू हाई स्कूल गुजरांवाला (पाकिस्तान) में मुख्याध्यापक हुए व लगभग वर्ष भर वहां काम किया। नवम्बर 1914 ई० में आप जम्मू के प्रिंस ऑफ वेल्ज़ महाविद्यालय में प्रवक्ता पद पर नियुक्त हुए। उस समय उनकी आयु 27 वर्ष थी।

श्री सिद्धेश्वर वर्मा को अपनी शैक्षिक अभिरुचियों के लिए जिस परिवेश की आवश्यकता थी। वह उन्हें इस महाविद्यालय में नियुक्ति के उपरांत प्राप्त हो गयी। यह प्रिंस आफ वेल्ज़ का भी सौभाग्य रहा कि इसके स्टॉफ में एक होनहार व्यक्ति शामिल हुआ, जिसकी प्रसिद्धि में इस महा-विद्यालय को चार चांद लगने वाले थे। जब जम्मू के इस प्राथमिक महा-विद्यालय में डॉ० वर्मा संस्कृत के प्रवक्ता के रूप में नियुक्त हुए, उस समय वे इतिहास में एम० ए० व संस्कृत में शास्त्री उत्तीर्ण किए हुए थे। मेरा अनुमान है कि उस समय तक पंजाब विश्वविद्यालय में संस्कृत विषय में स्नातकोत्तर स्तर की पढ़ाई का प्रबंध नहीं हुआ होगा, नहीं तो डॉ० वर्मा ने यह परीक्षा भी उत्तीर्ण की हुई होती।

प्रवक्ता-पद डॉ० वर्मा की लगन का गंतव्य नहीं था। इस पद से वस्तुतः उनकी "साधना-यात्रा" सहज हुई। उन्हें एक उपयुक्त माहौल प्राप्त हुआ।

इस महाविद्यालय में नियुक्ति के उपरांत उनकी दो पुस्तकें प्रकाशित हुई। ये दोनों पुस्तकें संस्कृत की दो प्रसिद्ध-पुस्तकों का अंग्रेजी अनुवाद था। इन पुस्तकों में एक तो 'श्वेताश्वेतर उपनिषद्' एवं दूसरी पुस्तक प्रसिद्ध महाकवि माघ की "शिशुपाल वध" थी।

प्रो० वर्मा में अलग-अलग भाषाओं को सीखने व पढ़ने की जो रुचि थी, उसी के परिणामस्वरूप वर्ष 1924 तक आपने जर्मन, फ्रैंच, ग्रीक व रूसी भाषाओं में अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। उनको जम्मू महा-विद्यालय में आए हुए दस वर्ष हो गए थे, अतः उन्होंने अपनी प्रतिभा की छाप देश के शैक्षिक क्षेत्रों में स्थापित कर ली थी। वर्ष 1924 में ही, भारत सरकार ने "लैंगवेज़ स्कॉलरशिप" के लिए उनके नाम का अनुमोदन स्वीकृत किया और वे लंदन की लंदन यूनिवर्सिटी में शोधार्थी के रूप में प्रविष्ट हुए।

रावलपिंडी से जम्मू आगमन डॉ० वर्मा के शैक्षिक कैरियर का प्रथम पड़ाव था जिसकी परिणति संस्कृत-शोधार्थी के रूप में लंदन-विश्वविद्यालय में जाना था। इस शोध में इनके गाईड प्रो० आर० एल० हर्नर थे, जोकि नेपाली-शब्दकोश के प्रसिद्ध लेखक थे। अपने गाइड से विचार-विमर्श करके उन्होंने शोध के लिए वह विषय चुना जो पूर्णतयः नवीन था। यह विषय था—"Critical studies in the phonetic observations of Indian Grammar"

अर्थात् "भारतीय शब्द-विशेषज्ञों का ध्वनि के आधार पर आलोचनात्मक अध्ययन।" इस विषय का संबंध पवित्र वेदों के उचित उच्चारण से संबंधित एक अंग के साथ था। यह शोध कार्य एक बड़ी चुनौती रहा। प्रो० वर्मा, उलझे विषयों का स्वागत करने वाले विद्वान थे। अपने शोध-कार्य के दौरान उन्होंने विश्व-प्रसिद्ध भाषा-वैज्ञानिक प्रो० डैनियल जोनज़ से संपर्क स्थापित किया। वे केवल डिग्री लेने वाले स्कालर नहीं थे। वे तो सच्ची श्रद्धा से नवीन जानकारी ग्रहण करने की अभिलाषा से इस कार्य में जुटे थे। तीन वर्षों तक निरंतर वे इस कार्य में लगे रहे। उन्होंने अपना थीसस पूरा किया तथा लंदन विश्वविद्यालय ने इस पर डॉक्टर ऑफ लिटरेचर की डिग्री प्रदान की।

इनकी लगन व गहन अध्ययन को ध्यान में रखते हुए इनके गाइड प्रो० टर्नर बहुत ही प्रभावित हुए। उन्होंने इस कार्य को पूर्ण करते-करते डा० वर्मा पर पड़े प्रभावों का जो उल्लेख किया, वे थे—

"डॉक्टर वर्मा ने मेरे अधीन तीन वर्ष शोध कार्य किया है। संस्कृत व अन्य भारतीय भाषाओं के अध्ययन से संबंधित एक विषय विशेष पर आधारित यह शोध-प्रबंध हमारी जानकारी (ज्ञान) में वृद्धि करने वाला है। मुझे प्रभु

प्रदत्त, डॉक्टर वर्मा की प्रतिभा ने प्रभावित ही नहीं किया, अपितु अपनी प्रतिभा से मौलिक काम लेने की की इनकी पूर्णतय: असाधारण प्रतिभा ने भी प्रभावित किया है। इस शोधकार्य में उन्होंने वैदिक काल से लेकर वर्तमान काल तक की भारतीय भाषाओं के तिथि बद्ध अध्ययन के उलझे रास्तों पर अपने को चलाया, ऐसा तो अब तक दूसरे किसी भारतीय स्कॉलर ने नहीं किया होगा व दूसरे देशों के बुद्धि-जीवियों में भी ऐसी प्रतिभा रखने वाले कम ही होंगे। इस काल में डॉ० वर्मा ने इंडो योरोपियन परिवार की भाषाओं के भाषाई ढाँचे को भली-भांति समझ लिया है तथा सब से महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि उन्होंने वर्तमान भाषा वैज्ञानिक थ्यूरी व प्रैक्टिस का बड़ी सफलता से अध्ययन किया है। इस विज्ञान का संबंध चाहे आम भाषाओं से हो चाहे भारत की कुछ विशेष भाषाओं के साथ। मेरे अनुसार, इसी दिशा में उनकी अपनी मातृभाषा—हिंदी के स्वर-विज्ञान से संबंधित लेख भारत की वर्तमान भाषाओं से संबंधित लिखे आलेखों में सब से बढ़िया हैं और ये लेख संपूर्ण ज्ञान उपलब्ध कराते हैं। इस उच्च स्तरीय विशेषता के अतिरिक्त डॉ० वर्मा एक विशेष आलोचकीय पदवी के भी धारक थे। —(लंदन, अगस्त 18, 1927 ई०)

अपना शोध-कार्य संपन्न करने के पश्चात् वे जब लंदन से लौटकर कॉलेज आए, उस समय वे चालीस वर्षों के थे। उनका यह शोध-प्रबंध सन् 1929 ई० में लंदन में ही प्रकाशित हो चुका था। फिर वे निरंतर 16 वर्षों तक इसी महा विद्यालय में अध्यापन कार्य करते रहे तथा साथ-साथ विभिन्न भाषाओं का अध्ययन भी करते रहे। उन्होंने जिस विषय पर भी खोज की उसकी श्रेष्ठता का अनुमान नीचे दी जा रही लंबी सूची से सुगमता से लगाया जा सकता है :—

1. Nasalisation in Hindi Literary works (1929).
2. Neuter Gender in Bhadarwahi (1930).
3. Studies in the Accentuatics of Samvada (1930).
4. Buru Shaski Text (1931).
5. The Indian Theory of time in Hindi (1936).
6. The Rudhari Dialect (1936).
7. The Phonetics of Iehanda (1936).
8. The Dialects of Rhasali Group (1939).
9. Dardo Pahari (1939).
10. Hindi, Urdu & Hindustani (1942).
11. उर्दू में गैर-जुबानों का तलफ्फुज (1943)

12. The Arabic Language as it Strikes a Sanskritish (1944).

13. Bhalesi Dialect (1948).

14. The Vedic Accent (1949).

इस प्रकार के लेखों व शोध कार्यों की संख्या सैंकड़ों में है। इन पर आम दृष्टि डाल कर ही पता चलता है कि शोध के प्रति इनकी रुचि का घेरा कितना विशाल था। जम्मू के पी० डब्लयू कॉलेज में अध्यापन के दौरान उन्होंने जम्मू-कश्मीर रियासत में "हिमालयन हिल डायलैक्टस (Himalyan Hill Dialects)" की खोज के संबंध में अपने खर्च पर तीन खोज यात्राएं कीं। परिणामस्वरूप उन्होंने लगभग इक्कीस (21) गुमनाम बोलियों को ढूंढा। इन बोलियों में भद्रवाही, भलेसी, खसाली ग्रुप व खासीग्रुप की बोलियां शामिल हैं। उन्होंने इन सभी बोलियों के भाषाई गुण, विशेषताएं व उनके शब्दकोशों पर आधारित अलग अलग मसौदे तैयार किए। अपनी तीसरी खोज-यात्रा के समय उन्होंने कश्मीर वादी के भीतरी भागों में पुरानी द्रविड़ भाषा के चिन्हों का पता भी लगाया था। हैदराबाद में जब आल इंडिया ऑरऐंटल कान्फ्रैंस के समागम में उन्होंने इस खोज की सूचना दी तो डॉ० जी० मार्जिन्सटिर ने उन्हें लिखा—

"I very much admire your energy and perseverance. I would like that there were many like you in India."

अन्य मसौदों सहित ये सभी मसौदे उन्होंने विश्वेश्वरानंद वैदिक इन्स्चटीच्यूट, होशियारपुर के नाम अर्पित कर दिये थे। कितने खेद का विषय है कि वर्षों से यह महत्वपूर्ण सामग्री इस संस्थान में पड़ी है किंतु इसे आज तक प्रकाशित नहीं किया गया। मैं समझता हूं कि रियासती बोलियों से संबंधित इन संदर्भ-ग्रंथों/ब्यौरों को जम्मू कश्मीर अकादमी को प्रकाशित करना चाहिए क्योंकि यह हमारी महान विरासत है व इसे नष्ट नहीं होने दिया जा सकता।

आज डॉ० वर्मा हम में नहीं हैं। उनकी याद को उनके जिन कार्यों ने अमरत्व प्रदान किया है उनमें प्रांत के हिमालय के निचले क्षेत्रों में बोली जाने वाली बोलियों का अध्ययन सर्वप्रथम है। तत्पश्चात् आते हैं उनसे संबंधित अलग-अलग विषयों के लेख व उनसे संबंधित आलेख।

अभी तक तो इन आलेखों को एकत्रित करके विषयानुसार क्रम देने के भी प्रयत्न नहीं हुए। उनके प्रसिद्ध कार्यों में लंदन में किया गया शोध,

"Phonetic, observations of Ancient-Sanskrit Grammarians"— शोध कार्यों के क्षेत्र में एक मील पत्थर है। डॉ० जी० ए० ग्रियर्सन के दस हज़ार पृष्ठों पर आधारित ग्यारह बड़े पुस्तक रूपों में प्रकाशित "Linguistic Survey of India" को संक्षिप्त रूप में दो पुस्तकों में प्रकाशित करना, इनका दूसरा महत्वपूर्ण कार्य है। इस तरह से उन्होंने डॉ० ग्रियर्सन के शोध सागर को गागर में भरा है। इस कार्य के लिए डॉ० वर्मा को तेरह वर्षों तक श्रम साधना करनी पड़ी थी।

कालेज से सेवानिवृत्त होने के पश्चात् कहीं भी अपना घर न होने के कारण वे परेशानी में रहे। सेवानिवृत्त होने के उपरांत उन्होंने अपनी सेवाएं विश्वेश्वरानंद वैदिक संस्थान को समर्पित कर दीं। संभवत: उनका विचार रहा होगा कि वे इस क्षेत्र में चले जाएंगे तो वहीं रहेंगे व वहीं काम करेंगे। 1947 में देश के विभाजन हो जाने से वैदिक रिसर्च इंस्टीच्यूट स्वयं बेघर हो गया, इसलिए वे नागपुर चले गए। यहां रहते हुए उन्होंने Etymology of Yaskra" का महत्त्वपूर्ण कार्य संपन्न किया।

नागपुर में रहते हुए ही एक संस्थान के अंतर्गत आप English Indian Dictionary के प्रोजैक्ट में काम करते रहे। अंतर्राष्ट्रीय इंडो कल्चरल अकादमी के नेतृत्व में मौनियर विलियम संस्कृत शब्दकोश का संशोधित एडीशन तैयार करने के लिए चार वर्ष तक अपना सहयोग दिया। फिर 1952 ई० में केंद्रीय सरकार के शिक्षा-मंत्रालय के अंतर्गत अंग्रेजी-हिन्दी के तकनीकी शब्दों का कोश तैयार करने के लिए एक विशेष-अधिकारी के रूप में नियुक्त हुए और वर्ष 1960 तक वहां काम करते रहे। उस समय के केंद्रीय शिक्षामंत्री श्री के० एल० श्रीमाली ने डॉ० वर्मा के प्रति अपनी श्रद्धा व सम्मान को इन शब्दों में प्रकट किया था—

"Dr. Verma is the founder father of Hindi terminology in that country."

जिस समय वे पी० डब्लयू कालेज में काम करते थे तो रियासती सरकार ने मिडिल स्टैंडर्ड तक के स्कूलों में आसान उर्दू को विद्या का माध्यम बनाने के उद्देश्य से बुनियादी अक्षरों का कोश तैयार करने के लिए एक कमेटी का गठन किया। डॉ० वर्मा भी इस कमेटी के मैंबर थे। श्री के०जी० सईदेन नाज़िम विद्या-विभाग में पदासीन थे। उन्होंने 1940 ई में, डॉ० वर्मा के योगदान व उनके व्यक्तिगत-प्रभाव को उजागर करते हुए लिखा था—

"He worked with me once several weeks on a committee appointed by the Kashmir Govt. for compiling a vocabulary of

simple Urdu works and it was a pleasure to see what a well informed but open mind he brought to bear on the difference of opinion that often cropped up.

He always adopted the attitude of a scholar to whom truth is more important than any other considerations. A Sanskrit and Hindi scholar of eminence, he would never insist on a word of Sanskrit or Hindi origin being included in the vocabulary of simple Urdu, if that word did not fit into the genius of that language. On the other hand if the word did so fit, he would plead its cause with a strength of conviction which did not suffer because it was reasonably expressed."

हैदराबाद स्टेट की सरकार की ओर से 1945-46 ई० में तैयार किए जा रहे उर्दू-विश्वकोष के लिए डॉ० वर्मा को ऑनरेरी संपादक के रूप में नामांकित किया गया। इस संबंध में उन्होंने 40 आलेख लिखे। इनके ही एक आलेख "आर्य भाषाएं" को उस्मानिया विश्वविद्यालय ने एम०ए० उर्दू के कोरस के लिए लगाया। इसी सेवा के लिए हैदराबाद सरकार ने आपको सम्मानित भी किया था।

सन् 1957 में जब वे हिन्दी तकनीकी पारिभाषिक शब्दावली के कार्य में विशेष अधिकारी के रूप में कार्य कर रहे थे तो केंद्रीय सरकार ने आपको पद्मभूषण की उपाधि से सम्मानित किया। 1973 ई० में जम्मू-कश्मीर प्रांत की कल्चरल अकादमी की ओर से आपको रोब ऑफ आनर भेंट किया गया।

1967 में पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला (पंजाब) की ओर से आपको डी०लिट० की ऑनरेरी डिग्री से सम्मानित किया गया। 1950 में "द्रविड़यन लिंग्युस्टिक एसो०" ने डा० वर्मा को तमिल भाषा में प्रवीणता प्राप्त करने के एवज में सम्मानित किया इस भाषा को सीखने के लिए उन्होंने दस वर्ष लगाए। जम्मू विश्वविद्यालय ने भी 1980 के आसपास उन्हें डी० लिट० की डिग्री से सम्मानित किया।

सन् 1947 में जब विश्वेश्वरानंद वैदिक रिसर्च इंस्टीच्यूट ने डॉ० वर्मा को उनके 60वें जन्मदिन पर, उनका सम्मान करते हुए "सिद्ध भारतीय" नामक एक "स्मारक-ग्रंथ" प्रकाशित करने का निर्णय लिया तो उनके एक गुणी शिष्य, भाषा वैज्ञानिक डॉ० हरदेव बाहरी ने आपको पत्र भेजकर अनुरोध किया कि

आप अपने स्नेही व मित्रों के कुछ पते प्रेषित करें ताकि डा० वर्मा पर प्रासंगिक लेख लिखाए जा सकें।

उत्तर में डॉ० वर्मा ने जो लिखा उसका भावार्थ इस प्रकार है—

"यह मेरे बुनियादी सिद्धांतों के विरुद्ध है कि मैं किसी की शुभकामनाएं प्राप्त करने के लिए निवेदन करूं, विशेषतया अपने लिए। मैं सच्ची बौद्धिकता व अध्यात्मिकता को अलगा नहीं सकता।"

इनके बिछुड़ने से देश एक आत्मिक सिद्ध, एक अंतर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि के धारक, भाषा वैज्ञानिक व श्रेष्ठ व्यक्ति को खो चुका है।

डॉ० वर्मा के निधन के साथ ही उनके अपने परिवार की कहानी भी एक तरह से समाप्त हो गयी है। उनकी एकमात्र संतान, उनका पुत्र बाल्यकाल में ही स्वर्ग सिधार गया था। उनकी दो बेटियां हैं। सेवानिवृत्ति के उपरांत वे अपनी छोटी लड़की के पास ही रहते थे, फिर वे अपनी बड़ी लड़की के पास चले गए। बेशक वे इस उम्र में भी ठीक ठाक प्रतीत होते थे परंतु उनकी याददाश्त ने उनका साथ छोड़ दिया था। उनकी स्मृति में जो भी दर्ज था, उस अमूल्य से वे वंचित हो गए 17 और अगस्त 1985 को 98 वर्ष की अवस्था में उनका देहांत हो गया।

☐ अनु० **मनोज शर्मा**

स्वामी ब्रह्मानंद तीर्थ

□ डॉ० चम्पा शर्मा

संसार सिंह डुग्गर समाज की उन महान् विभूतियों में से एक थे, जिन्होंने न केवल अखनूर में अपितु सम्पूर्ण डोगरा जाति में अपना एक विशेष स्थान बनाया। इनका जन्म फाल्गुन मास की नौवीं तिथि कृष्ण पक्ष को शुक्रवार विक्रमी सम्वत् 1848 अर्थात सन् 1891 ई० को ठाकुर मियां सिंह के परिवार में हुआ। इनके पूर्व अखनूर राजघराने के जम्वाल राजपूत थे। अखनूर रियासत के अन्तिम राजा तेज सिंह के लखनपुर में मारे जाने से इस राज परिवार की दशा दिन-प्रतिदिन बिगड़ती गई। अखनूर जम्मू राज्य के अधीन हो गया। संसार सिंह के पूर्वजों ने अखनूर नगर के दक्षिण की ओर से चिनाब नदी के किनारे गुगजीघाट पर एक किलेनुमा घर बनाया। यहीं पर संसार सिंह का जन्म हुआ।

---

1. संसार सिंह जी द्वारा रचित कविताओं की पुस्तकें।
2. 'अमृत वर्षा' के अन्तिम चार पृष्ठों पर लिखा उनका छंदोबद्ध "आतम निवेदन।"
3. प्रो० राम नाथ शास्त्री को दिया संसार सिंह का स्वलिखित प्रकाशित संक्षिप्त जीवन परिचय।
4. केन्द्रीय साहित्य अकादमी नई दिल्ली की ओर से स्व० जे०सी० साठे से 'मेकर आफ इंडियन लिट्रेचर' श्रृंखला 'स्वामी ब्रह्मानंद तीर्थ' नाम से अंग्रेजी में लिखित कर सन् 1982 ई० में मूल रूप में प्रकाशित तथा डोगरी में अनुवादित सन् 1985 ई० में प्रकाशित मोनोग्राफ (Monograph)।

संसार सिंह जी के जीवन और व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने के लिये इस लेख में जिन स्रोतों-साधनों से सहायता ली है, वह इस प्रकार है :

संसार सिंह के दादा ठाकुर भूपसिंह तथा परदादा का नाम ठाकुर केहर सिंह था। ठा० मियां सिंह ने दो विवाह किये थे। उनके छ: बेटे थे। पहल धर्मपत्नी सुखमी से पांच बेटे—प्रभात सिंह, संसार सिंह, करतार सिंह, हरिसिंह और कुमेर सिंह थे। दूसरी धर्मपत्नी गोकली ने एक बेटे को जन्म दिया, जिस का नाम रघुनाथ सिंह रखा गया।

संसार सिंह की माता सुखमी देवी राजपूत अंबाराना शाखा से थीं। वह ऊंचे कद तथा रौबीले व्यक्तित्व वाली होने के साथ धार्मिक विचारधारा, पूजापाठ और धर्म-कर्म करने वाली नारी थीं। सभी उन का आदर-सम्मान करते थे। संसार सिंह में अपनी मां के बहुत से गुण विद्यमान थे। वैसे तो सुखमी देवी ने सभी बेटों का कठिन समय में बड़ी मेहनत कर के लालन-पालन किया। परन्तु संसार सिंह में बाल्यावस्था से ही एक निरालापन देखने में आता था। उन की लिखावट बड़ी सुन्दर थी। दूसरे भाईयों की भांति संसार सिंह का भी अखनूर की एक माध्यमिक पाठशाला में नामांकन किया गया। पिता की मृत्यु के कारण सभी भाइयों को पाठशाला की पढ़ाई बीच में ही छोड़ देनी पड़ी। जब मियां सिंह की मृत्यु हुई, संसार सिंह उस समय तीसरी-चौथी कक्षा में पढ़ते थे। जिस पाठशाला में संसार सिंह पढ़ते थे, उस पाठशाला के मौलवी साहब का उर्दू तथा फ़ारसी शायरी से अधिक लगाव था। संसार सिंह पर मौलवी साहब के शायराना मिज़ाज का प्रभाव अवश्य पड़ा होगा, जिसकी पुष्टि संसार सिंह के 'स्वामी 'ब्रह्मानंद तीर्थ' बन कर कवि जीवन से होती है। पाठशाला की पढ़ाई की ओर रुचि बनी रही। उन्होंने संस्कृत, हिन्दी, फ़ारसी, उर्दू और पंजाबी भाषाओं का गूढ़ अध्ययन किया। चालीस वर्ष वेदान्त पढ़ा। सूफ़ीमत के अध्ययन-मनन के कारण उन के व्यक्तित्व पर अधिक प्रभाव पड़ा।

संसार सिंह क़द के मालिक थे। पुष्ट शरीर होने के कारण बाल्यावस्था में उन के कसरती तथा एक अच्छा खिलाड़ी होने के संकेत मिलते हैं। संसार सिंह को युवा अवस्था में चिनाव नदी में तैरने का शौक था। चंद्रभागा के बर्फीले ठंडे पानी में स्नान करके, न केवल कामेश्वर महादेव के दर्शनों के लिये शिव मंदिर जाना उन की आदत थी, अपितु वहां होने वाली पूजा-अर्चना में

भाग लेने में भी रुचि थी। खेलों में "कबड्डी" खेलना उन्हें बहुत प्रिय था।[1]

उन की अल्पायु में ही उन के पिता मियां सिंह का निधन होने के कारण संसार सिंह को नौकरी करनी पड़ी। इस समय की प्रथानुसार संसार सिंह ने सेना में नौकरी कर ली। जे० सी० साठे के अनुसार वह "रघु प्रताप" नाम की यूनिट में सिपाही भर्ती हुए। शिक्षित होने के कारण शीघ्र ही पदोन्नति होने से नायक बन गये। रुड़की जाकर सर्वेयर की परीक्षा पास की, जिसके फलस्वरूप पदोन्नत कर के इन्हें 'नान कमीशन्ड' आफिसर बना दिया गया। सब से छोटा भाई कुमेर सिंह, लैफ्टीनैंट कर्नल गौरीनंदन साठे (जे०सी० साठे के दादा) द्वारा उन्हीं की यूनिट में भर्ती कर लिया गया।

कम आयु होने के कारण उन्हें 'बैंड' यूनिट में रखा गया। संसार सिंह को जब इस बात की भनक पड़ी कि कुमेर सिंह स्कूल की पढ़ाई छोड़ कर सेना में भर्ती हो गया है तो उन्होंने कैप्टन देवी सरन साठे की मध्यस्थता से कुमेर सिंह का नाम गौरी नंदन द्वारा सेना से कटवा कर उसे अखनूर भेज दिया। सन् 1913 ई. में कुमेर सिंह दोबारा पंजाब रैजीमैंट की 'रूद्र शिव नाभ इन्फेंट्री की बटालियन (Rudra Shivnabh Infantry Battalian) में भर्ती हो गया। जम्मू-कश्मीर रियासत का बैंड तथा केन्द्रीय सीमा सुरक्षा बल के बैंड का श्रीगणेश कुमेर सिंह ने ही किया था ?

संसार सिंह के सैनिक जीवन में एक विशेष घटना घटी, जिस की जानकारी जे० सी० साठे को संसार सिंह के छोटे भाई कुमेर सिंह द्वारा मिली। साठे परिवार के साथ संसार सिंह के घनिष्ठ मैत्री पूर्ण सम्बन्ध थे। कैप्टन देवीसरण संसार सिंह के प्रियमित्र थे, यह घटना रियासत से दूर गिलगित में घटी।। यहां संसार सिंह की यूनिट गई थी। संसार सिंह को अच्छे तथा नये फैशन के कपड़े पहनने का बड़ा शौक था। एक दिन अचानक उनके अफसर कर्नल ईशरी सिंह ने उन से पूछा, "अपने वेतन से कुछ बचाते भी हो, या सारा वेतन कपड़ों पर ही खर्च करते हो?" संसार सिंह को अपनी निजी जिन्दगी में बाहरी हस्तक्षेप सहन न हुआ। उन्होंने अफसर से पूछा "क्या आप के पास

---

1. Sathe J.C. Makers of Indian Literature—Swami Brahmanand Tirth Page—12
   चालीस वर्ष वेदान्त शास्त्र पढ़ने में बीते हैं,
   पंजाबी-उर्दू, फ़ारसी के सूफ़ी मत को पढ़ा है।
   दिन प्रतिदिन हुई मस्तानी का नशा भी उस पर चढ़ा है।

किसी ने मेरी लिखित शिकायत की है ?" क्रोधित होकर उन्होंने अफ़सर के सामने वर्दी सहित सभी कपड़े फाड़ कर जला दिये और स्वयं नंगे पैदल चलकर जम्मू आ पहुंचे । वर्दी को जलाना तथा क्रोध में आकर नौकरी छोड़ चले आना सैनिक-अनुशासन भंग करना होता है। यह अनुशासन हीनता तथा दंडनीय अपराध तो उन्होंने अवश्य किया था, परन्तु इस का परिणाम क्या हुआ होगा और छुटकारा कैसे हुआ होगा या किस ने करवाया होगा, इस विषय में कोई जानकारी नहीं मिलती। संसार सिंह ने स्वयं भी अपनी जीवनी में इस घटना का कहीं भी उल्लेख नहीं किया । इसलिये यह घटना सही न मान कर हास्या-स्पद बात मान ली गई है। परन्तु इस घटना को किसी "दिमाग़ी फ़तूर का कारनामा" कह देना भी अनुचित न होगा । क्रोधावेश में परिणाम की परवाह किये बिना कोई पग उठाने का साहस संसार सिंह को अपने पिता ठाकुर मियाँसिंह से विरासत में मिला था। एक बार ठाकुर मियां सिंह लोहड़ी के त्यौहार पर बधाई देने तथा भूमि सम्बन्धी कुछ रियायतें लेने के लिए जम्मू के महाराजा के पास गये, परन्तु सफलता न मिलने पर क्रोधित होकर महाराजा के सम्मुख ही ज़मीन जायदाद सम्बन्धी सभी कागजात और पट्टे जला कर राख कर दिये। इतना ही नहीं अखनूर आकर ठाकुर मियां सिंह ने अपने नौकरों को साथ लेकर सारी पकी फसल जला कर राख कर दी। यही कारण था कि वह भूमिहीन हो गये थे। कुछ समयोपरान्त महाराजा की कृपा हुई और उन्हें फिर से भूमि प्राप्त हो गई।

संसार सिंह स्वतंत्र प्रवृत्ति के थे। उन्होंने जहाँ भी नौकरी की, वहां उन के पांव टिक नहीं पाये। सैनिक नौकरी के पश्चात् उन्होंने गवर्नमैंट रणवीर प्रैस में एक वर्ष लिपिक के रूप में काम किया। उस समय उन का विवाह हिमाचल के नूरपुर नगर की एक सुशील तथा सुन्दर[2] राजपूत कन्या से हो चुका था। जो कि महाराजा हरिसिंह की चम्बा वाली रानी की भतीजी थी। संसार सिंह जिस समय प्रैस में नौकरी करते थे, वह काली जन्नी मोहल्ले में एक किराये के मकान में रहते थे। उनकी माता सुखमी भी उन के साथ इसी मकान में रहती

---

1. मान सरोवर (1987 ई० का संस्करण) पृष्ठ—4.
2. Makers of Indian Literature—Swami Brahmanand Tirth Page—11.

थीं। इन की पहली पत्नी पांच दिनों का बालक छोड़ स्वर्ग सिधार गई।[1] एक एक माह के उपरान्त वह नन्हा बालक भी चल बसा। इस के उपरान्त इनकी सगाई भद्रवाह की एक सुन्दर कन्या से हुई, परन्तु इन्होंने विवाह नहीं किया।

प्रैस की नौकरी छोड़कर संसार सिंह जम्मू कश्मीर रियासत के 'खातर-तवाज़ा' विभाग में फराश खाने के निरीक्षक नियुक्त हुए। अपनी कर्त्तव्य निष्ठा और ईमानदारी के लिये डोगरा लोग सदैव प्रसिद्ध रहे हैं। संसार सिंह भी एक ऐसे ही डोगरा सपूत थे। इन की कर्त्तव्य निष्ठा और ईमानदारी पर इनको सरकार की ओर से सम्मान तथा पांच हजार रुपये पारितोषक में दिये गये। सरकारी गजट में भी उनकी प्रशंसा प्रकाशित हुई। यह बात सन् 1921-22 ई० की शरद ऋतु की है, जब प्रिंस आफ वेलस भारत की यात्रा पर आये थे। देश भर में, विशेष रूप से शाही रियासतों में उन के स्वागत के लिये तैयारियां चल रही थीं। जम्मू दरबार में भी उनके स्वागत के लिए जोरदार-अभियान चल रहा था। लाखों रुपये का सामान खरीदा गया था। कमीशन खोर उच्चाधिकारियों ने सामान पूर्ति करने वालों के साथ सांठ-गांठ कर रखी थी। उस समय संसारसिंह 'खातिर-तवाजा' विभाग में स्टोर कीपर थे। जब इन्हें इस बात की भनक पड़ी कि खरीदे गये सामान का मूल्य असल से अधिक बताया गया है, तो उन्होंने अपने भंडार से सामान देने के लिये अपनी अस्वीकृति प्रकट कर दी। उच्चाधिकारियों ने संसारसिंह को बहुत डराया, धमकाया परन्तु वह अपने कहे पर अटल रहे। अन्त में बम्बई से राजकुमार हरिसिंह की ओर से भेजे गये आदेशानुसार अधिकारियों को आवश्यक सामान दिया गया उस समय राजकुमार हरिसिंह महाराजा प्रतापसिंह की ओर से प्रिंस आफ वेल्ज को अगवानी करने बम्बई गये हुए थे। शाही अतिथि की जम्मू कश्मीर से वापसी के उपरांत एक जांच समिति बिठाई गई। समिति द्वारा इस बात का पता चला कि संसारसिंह की सूझ-बूझ ने ही रियासत को चालीस हज़ार रुपये की

---

1. नूरपुर की कन्या एक मेरी ब्याहता रानी थी।
अति सुशील स्वभाव, अपने रूप की रानी थी।
छः मास जब हुए विवाह के मिलकर इकट्ठे बैठते थे।
बार-बार मुझे साधु बनने की यादें आती थी।।
हर समय मैं जब उस का हंसमुख चेहरा देखता था।
बिना कसूर मरना मैं उसका हर समय सोचता था।।
दो वर्ष पूरे बीते ना कोई रोग बीमारी थी।
पांच दिनों का बालक छोड़ परलोक वह सिधारी थी।।

हानि से बचा लिया है। इस कार्य कुशलता के कारण ही उन्हें राज दरबार में आने जाने की खुली छूट मिल गई। महाराजा हरिसिंह उन्हें अपने बराबर कुर्सी पर बैठाते थे। ससार सिंह को शाही मान-सम्मान की भूख नहीं थी। उनकी लगन तो प्रभु की ओर लग चुकी थी। उन्हें राज दरबार की ओर से नायब तहसीलदार के पद का प्रस्ताव भी मिला, परन्तु ससार का मन इस संसार से विरक्त हो चुका था। वह साधु बनना चाहते थे। उनके अपने शब्दों में—"बावजूद इसके भी मेरा दिल नौकरी छोड़कर साधु बनने के लिए हर समय तैयार रहता था।" संसारसिंह का गिलगित से पैदल "प्रोटैस्ट मार्च" कर के जम्मू आना, उनकी भविष्य में ज्ञान की खोज में पद यात्रा करने का प्रारम्भिक उपक्रम प्रतीत होता है।[1]

संयोग से उन्हीं दिनों स्वामी रामतीर्थ के चेले स्वामी गोविंदानंद पंजाब से होते हुए, जम्मू आये थे। संसारसिंह ने उनसे दीक्षा ली। उस समय उनकी आयु चौंतीस वर्ष की थी। उन्हीं दिनों महाराजा हरिसिंह का राज-तिलक भी था। दोनों घटनाओं में एक मास का अन्तर रहा होगा। संसारसिंह के कथनानुसार इतनी प्रसन्नता महाराजा हरिसिंह को अपने राजतिलक होने की नहीं हुई थी, जितनी कि संसारसिंह के "सन्यासी ब्रह्मानन्द" बनने की हुई थी।

ब्रह्मानन्द कहलाने से पूर्व संसारसिंह जम्मू के पंडित निक्काराम शास्त्री के चरण कमलों में बैठकर शिक्षा प्राप्त कर चुके थे। अपने पूज्य गुरु के शरणागत होकर उन्होंने संस्कृत भाषा तथा संस्कृत के प्रमाणित ग्रंथ ब्रह्मसूत्र; शंकर भाष्य, अद्वैत सिद्धि तथा उपनिषद् पढ़े थे। उन्होंने व्याकरण का भी अध्ययन किया था। तीर्थयात्रा के समय ऋषिकेश जैसे पवित्र स्थान पर उच्चकोटि के महात्माओं से वेदांत दर्शन का ज्ञान प्राप्त किया। उस का चिंतन मनन किया। साधु सन्तों से साधु जीवन के गुर सीखे। तीर्थ यात्रा की वापसी पर उन्हें "धर्मार्थ ट्रस्ट" की ओर से पुरमंडल के महंत की गद्दी दे दी गई। दो वर्षों के उपरांत उन्होंने यह सब छोड़ दिया। उनकी वैद्यकी शिक्षा में रुचि हो गई। वैद्यकी सम्बन्धी पुस्तकें पढ़कर उन्होंने आगरा विद्यापीठ से आयुर्वेदाचार्य की परीक्षा पास कर ली।

सन्यासी बनने से पूर्व संसारसिंह ने रानी तालाब जम्मू के निकट चार हजार रुपये खर्च करके एक कुटिया का निर्माण कराया और एक गुजरांवाला (अब पाकिस्तान में) में। ग्रीष्म ऋतु में कश्मीर और सर्दियों में जम्मू, गुजरांवाला या हरिद्वार चले जाते थे। देश के विभाजन होने के बाद उन्होंने

1. मान सरोवर (संस्करण, 1987 ई०) पृष्ठ-11

गुजरांवाला की कुटिया छोड़कर उत्तर प्रदेश के जिला बिजनौर डाकघर 'बारूकी' में एक कुटिया बना ली तथा ग्रीष्म ऋतु और बरसात के दिनों में वह वहां जाकर रहने लगे।

सन् 1956 ई० में सन्यासी संसारसिंह ने अखनूर नगर में चिनाब नदी के गुर्गीघाट पर अपनी समाधि तैयार कराई। साथ ही उन्होंने अपनी एक प्रतिमा भी तैयार कराई। पंडितों से विचार-विमर्श के पश्चात गंगा सप्तमी के दिन पूरे विधि विधान सहित उस पर रोट, झोली, वस्त्रादि रखकर, शिव पूजन तथा अष्टाध्यायी रूद्री का पाठ आदि करके उसे समाधि में स्थापित कर दिया।

इस प्रकार की विचित्र घटनाएं जिस महापुरुष के जीवनकाल में घटी, उसे लोग काफी समय तक संसारसिंह ही कहते रहे। अन्त में वही व्यक्ति स्वामी ब्रह्मानन्द 'तीर्थ' बनकर डोगरा जगत में प्रसिद्ध हुए। उन्हें डोगरी भाषा के साथ बहुत प्रेम था। भोले-भाले, छल-कपट से दूर, डोगरी के लिए उनके हृदय में दया की भावना थी। वे उनके कल्याणार्थ ही सोचते। संसारसिंह ने वेदांतों का सारा ज्ञान सरल अनुवाद[1] इस भाषा कर छ: काव्य ग्रथों[2] द्वारा डोगरा जगत को समर्पित किया।

---

1. यह वेदांत है तानों से भरा घर-घर किसने पढ़ाना था।
   भोली-भाली जनता के लिए किस ने सरल बनाना था।।

   अमृत वर्षा : पृष्ठ 109

   (अ) यह वेदांत सरल बनाया जन्म फंदों के हरने को।
   इस देश के लोगों हेतु भवसागर के तरने को।।

   (आ) आदि अनादि डुग्गर हमारा पहाड़ी देश कहलाता है।
   इसी लिए वेदांत पहाड़ी बोली में लाया है।।
   जिन्होंने गाया उन्होंने पाया, वही अपने को रंग पाया है।
   परम्परा से चलता आया भेद कोई नया नहीं आया है।।

   ब्रह्म संकीर्तन के श्रवण प्रकरण से पृष्ठ —1

2. (क) गूंगे का गुड़—दिसम्बर सन् 1955 ई०
   (ख) मानसरोवर—मई सन् 1957 ई०
   (ग) श्री ब्रह्म संकीर्तन सन् 1958 ई०
   (घ) गुप्त गंगा अक्तूबर सन् 1968 ई०
   (ङ) अमृत वर्षा मार्च सन् 1959 ई०
   (च) ब्रह्मानन्द भजनमाला फरवरी सन् 1961 ई०।

संसारसिंह पर इस्लामी रहस्यवाद का प्रभाव बाल्यावस्था से ही उनके गुरु मौलवी साहिब द्वारा पड़ा था। गोबिन्दानन्द ने अपने गुरु रामतीर्थ की उर्दू रचनाओं को प्रकाशित करवाया। गोबिंदानन्द ने स्वयं भी उर्दू तथा पंजाबी में लिखा है।

सूफी कवियों ने जिस प्रकार अलौकिक प्रेम की प्राप्ति के लिए लौकिक प्रेम का छोर पकड़ने पर बल दिया है, उस प्रकार ब्रह्मानन्द ने भी इस संसार को जीवात्माओं का मायका तथा प्रभुधाम को ससुराल कहा है। उनके कथनानुसार 'ब्रह्म' ही सब जीवों का पति है।

परम पति सब का परमेश्वर वेदों ने सच्च सुनाया है।
जनम-मरन सब उसके हाथ घर-घर में समाया[1] है॥

सूफियों ने जीव के समाप्त होने के पश्चात् 'बका' की स्थिति में साधक को ईश्वर में लीन हुआ कहा है। सूफी कवि "अब्दुल समद" ने तो "अनहद नाद" सुनने के उपरांत जीव और परमात्मा के एक होने की बात कही है[2]। सूफी संतों ने दिव्य सुन्दरता को "ब्रह्म" कहा है। इसलिए वह प्रेम का अधिकारी है। ब्रह्मानन्द जी ने भी इसी बात को इस प्रकार कहा है—

जो अतिथि संग जाये, उसे पति कैसे अपनायेगा।
सिर देकर बांहों से पीटे रोते उम्र बितायेगा॥

ब्रह्मानन्द ने इस दिव्य-सुन्दरता को जीवात्मा के भीतर स्थित बताया है। वह लिखते हैं कि—आंखों के पर्दे बन्द होते ही जब चरम दृष्टि भीतर झांकने लगती है तो वहां एक ज्योति पुंज दिखाई देने लगता है। जिसे देखने से जीवात्मा परमात्मा में लीन हो जाती है[3]। उसी समय उसे अनुभव होता है कि सभी बातें व रिश्ते-नाते झूठे हैं। ब्रह्मानन्द के शब्दों में—

---

1. गूंगे दा गुड़ : पृष्ठ 22-23
2. जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य : पृष्ठ-310
3. पलकों के झुका कर पर्दे, अनदेखा भी देख लिया।
   जग अब खेल तमाशा दीखे, मैं मेरा मिटा लिया॥
   धूलि-धूसरित भई त्रैलोकी, कष्ट सभी है दूर हुए।
   मन बैरी भी मित्र बना है, दुःख दर्द सब दूर हुए॥
   बाहर ढूंढन अब न जाऊं, भीतर पारस पाया है।
   जग जेल से हुआ छुटकारा, भूला फिर घर आया है॥

पति की आत्मा पहचान ली, बाकी सब जग झूठा है।
बोध-वाटिका में प्रेम मिलन यह अजब अनोखा है ।।

सूफ़ियों ने जिसे 'नफ़स' या शैतान कहा है उसे वेदांत दर्शन 'माया' की संज्ञा दी गई है । यही शैतान नफ़स या 'माया' जीवों को पग-पग पर विचलित करती हुई, चौरासी के चक्र में डाल देती है । ब्रह्मानन्द जी ने इस 'माया' से दूर होकर 'परमनिधि' को प्राप्त करने की बात इस प्रकार से कही है —

माया को छोड़ा और ज्ञान विरासत पा ली ।
जग जेल से हुआ छुटकारा, किया सामने पाया ।।

सूफ़ी तथा वेदांतों के साधकों को यह परामर्श दिया गया है कि इस साधना की शिक्षा किसी 'पीर' या 'गुरु' से लें। यह एक सिद्धान्त है कि साधक अपने आप को 'गुरु' अर्थात् 'इमान' के हाथ में एक निर्जीव शव की भांति छोड़ दे । ब्रह्मानन्द जी ने 'जीव' का कल्याण गुरु के हाथों बताते हुए कहा है ।

गुरुमुख द्वारा इस को समझें मनचित लाई ।
देवताओं ने भी उस समय ऊंची पदवी पाई ।।

गुरुमुख से निकले शब्दों का सहारा लेकर गुरु-महिमा के महत्त्व को ब्रह्मानन्द ने कई पौराणिक प्रतीकों द्वारा स्पष्ट किया है। अपनी रचनाओं में उन्होंने गुरु की संगति को हंसों का साथ तथा दुर्जनों के साथ को कौए से मित्रता बताई है ।

हंसों के संग साथ न इस का, मान सरोवर जाना है ।
कागा का यह साथ न छोड़े मरना है या जीना है ।।

जिस प्रकार सूफ़ियों ने उस 'अल्ला' को पाने के लिए सनातन पंथी मुसलमानों के रोजा, नमाज़ ज़कात आदि को थोथा बताया है, उसी प्रकार ब्रह्मानन्द ने भी सिर मुंडवा कर या जटाएं धारण करने, हाथ में चिमटा पकड़ कर भगवां वस्त्र धारण करके नंगे पांव यात्रा करने वाले ढोंगियों के पूजा-पाठ को 'नीम का वृक्ष' नामक कविता में अर्थहीन कहा है ।

जीव तथा ब्रह्म के एक हो जाने की स्थिति को सूफ़ियों ने 'बका' और वेदांत के जानकारों ने "कैवल्यधाम" कहा है । इस को सूफी पारिभाषिक शब्दावली में 'मरिफ़त' भी कहा गया है । यहां तक वही साधक पहुंच सकता है, जिसमें सिर की बाज़ी तक लगाने का साहस भी हो, नहीं तो दो मार्गों पर

चलने वाला मनुष्य सदैव भूल-भुलइयों में फंस कर रह जाता है। सूफियों के इस मत का समर्थन करते हुए ब्रह्मानन्द ने कहा है—

"दोराह पर चलने वाले को सही राह नहीं मिलती ना इस का सफर समाप्त होता है, बीच में भटकता रहता है।"

वास्तव में संसारसिंह जन्म से अखनूरिया जम्वाल राजपूत था। जिस का प्रारम्भक जीवन उस समय के दूसरे राजपूत वच्चों की भांति था, परन्तु उस में कुछ विलक्षणताएं भी थीं, जो परम्पराओं से हट कर थीं। पिता की असमय मृत्यु से संसारसिंह के कंधों पर घर का बोझ आ जाने से उसे अपनी राह स्वयं ढूंढने का समय मिल गया। ईश्वर भक्ति की लगन कुछ तो माता सुखमी के पूजापाठी संस्कारों के कारण लगी, कुछ मौलवियों और वेदांतों ज्ञाताओं की संगत द्वारा तथा कुछ संस्कृत पंजाबी, उर्दू, फारसी भाषाओं के ग्रंथों के अध्ययनवश। संसारसिंह से "ब्रह्मानन्द" बनने का माध्यम स्वामी रामतीर्थ के शिष्य स्वामी गोबिदानन्द का जम्मू आना वना। चालीस वर्षों का अर्जित वेदांत ज्ञान संसारसिंह ने अपनी ढलती उम्र में, डोगरी कविता के माध्यम से सम्प्रेषित किया। जीवन के वहुमूल्य सत्तर वर्ष पूरे करके संसारसिंह ने 12 अक्तूबर सन् 1962 ई० अपने नश्वर शरीर का परित्याग कर दिया।

गंगे का गुड़ : पृष्ठ 30।

अनु० शिव दोबलिया

डॉ० लाल चन्द गुप्ता

□ डा० मंजरी आज़मी

जम्मू कश्मीर में बहुत से ऐसे सामाजिक कार्यकर्ता हुए हैं जिनके त्याग एवं तपस्या ने समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन लाये हैं। उन्हीं में शेरे डुग्गर लाला हंसराज का नाम काफी प्रसिद्ध हुआ। लाला जी का प्रभाव केवल रियासत ही नहीं अपितु पंजाब में भी था। डॉ० एल०सी० गुप्ता के परिवार के लोग भी इनसे प्रभावित थे। लाला जी के अनुयायी होकर डॉ० लाल चन्द गुप्ता भी परम यशस्वी बने।

डॉ० एल० सी० गुप्ता के दादा बूटा मल जी "भूरे चक", जिला गुरदासपुर के रहने वाले थे। इनका पैतृक गांव यही था। किन्तु व्यापार के लिये इनके पिता "घोड़ा गली" के स्थान पर आ बसे। डॉ० एल०सी० गुप्ता जी का जन्म 13 अप्रैल, 1904 ई० तदानुसार बैसाख 1961 विक्रमी में इसी गांव में हुआ। इनके पिता का नाम शंकर दास था तथा माता का नाम सरधो देवी था। शंकर दास जी ने यथाशक्ति दान दक्षिणा बांटी और भविष्यवाणी की कि "जिस बच्चे के जन्म लेने पर ईश्वर ने दान दक्षिणा बांटने तथा लोगों की सेवा करने की सामर्थ्य दी, वह बड़ा होकर देश तथा जनता का सेवक बनेगा और कुल की परम्परा निभाएगा। सच्चे मन से निकली हुई ईमानदाराना तथा नेक इच्छायें अक्सर सच होती हैं।"[1] और यह भविष्यवाणी शब्दश: सच सिद्ध हुई। बच्चे का नाम लाल चन्द रखा गया।

गुप्ता जी को बचपन से ही हर बात को परखने की आदत थी। किसी रोगी से पूछते, "मुझे अपनी बीमारी के बारे बताओ।" किसी को कहते, तुम बीमार कैसे हुए? उनका स्वभाव चंचल भी था। हर चीज को अपने हाथों देखते-

1. सच्चा सेवादार : शिव राम शर्मा, पन्ना 13

परखते, उधेड़ उधेड़ कर अलग-अलग कर देते फिर स्वयं ही जोड़ कर ठीक भी कर लेते : वे सैर करने के बहुत शौकीन थे। कई कई मील घर से बाहर चले जाते और प्रकृति के अजूबों का अध्ययन करते। अपने मित्रों को इकट्ठा करके उन्हें अच्छी-अच्छी बातें सुनाते। लाला शंकर दास जी के मकान पर अक्सर साधु-संतों का आना होता था। गुप्ता जी उन से घुल मिल जाते थे। उनसे वे उनकी यात्रा की बातें सुनते तथा कभी-कभी ऐसी-ऐसी बातें पूछते जो बहुत ही विस्मयकारी तथा रुचिपूर्ण होतीं। जैसे, "क्या साधु किसी खास इलाके के रहने वाले होते हैं ?" हर मनुष्य साधू क्यों नहीं है ? इन लोगों के खाने पीने का साधन क्या है ?" कभी वह अपनी मां से साधु बनने की इच्छा व्यक्त करते। वह देवी सी महिला इन्हें समझाती, "बेटे दुनिया त्यागना उतना बड़ा काम नहीं है, जितना इसी दुनिया में रह कर दूसरों की सेवा करना, दूसरों के दुखों में सम्मिलित होना तथा दान-पुण्य करके औरों की मदद करना।"[1]

इस प्रकार यह गुण उनके मन में घर कर गये। विशेष रूप से लोगों की सेवा तथा किसी नयी बात की खोज करना। यही दो गुण आगे चलकर समाज-सुधार, लोगों की सेवा तथा "गुप्ता आई लोशन" के आविष्कार के रूप में सामने आयीं। बचपन से ही यह माता-पिता का आदर करते, बुजुर्गों के साथ बड़े आदर से पेश आते, साधु-फकीरों तथा दीन-दुखियों की सेवा करके मानसिक संतुष्टि पाते। अपने से छोटों के साथ स्नेह तथा हमदर्दी से पेश आते। बचपन से ही लोक-सेवा का इन्हें इतना ख्याल था कि शिव राम शर्मा जी का कहना है "जब वे स्कूल जाते तो नौकरों को भी साथ ही ले जाते और आधी छुट्टी के समय खाने के लिये भी कुछ न कुछ ले जाते थे। परन्तु स्वयं कुछ भी नहीं खाते थे। सब कुछ ज़रूरतमन्द मित्रों में बांट देते। टोपी तथा बूट महीने में तीन-तीन, चार-चार बार बनवाते थे। वह भी अपने स्कूल के गरीब साथियों में बांट देते।"[2] गरीबों की मदद करना और ज़रूरतमन्दों की ज़रूरतों को पूरा करने की यह आदत बचपन से ही उनके चरित्र का एक हिस्सा बन चुकी थी। इसी के फलस्वरूप उन्होंने आंखों के मुफ्त ईलाज तथा "गुप्ता फ्री फस्ट एड" जैसे लोक-सेवा के कार्यों को अंतिम समय तक जारी रखा।

छः वर्ष की आयु में इन्हें गांव के स्कूल में दाखिल कराया गया। गुप्ता जी कुशाग्र बुद्धि थे। जो कुछ सीखतें, उसे याद रखते। यही कारण था कि अपने शिक्षकों का बहुत सम्मान करते थे। बल्कि यों कहना चाहिए कि शिक्षकों की इज्जत करना इन्होंने अपने जीवन का आदर्श बना लिया था। सोलह वर्ष

---

1. चिरागे राह : डा० मंजर आज़मी, पन्ना 22

2. सच्चा सेवादार : शिव राम शर्मा, पन्ना—18

की आयु तक स्कूल में पढ़ाई करते रहे। इन्हें जफरवाल नया जम्मू के स्कूलों में पढ़ने का अवसर भी मिला। अंडर मैट्रिक तक पढ़ने के बाद समय ने करवट ली। दस वर्ष की आयु में मां के देहांत से इन्हें गहरा आघात पहुंचा। इनके मन में यह एहसास जागा कि अब सब कुछ स्वयं ही करना है। चाहे घर में किसी प्रकार की कमी न थी फिर भी यही सोच थी कि कुछ करना चाहिये। इन्होंने सरकारी नौकरी करने की ठान ली। शीघ्र ही रावलपिंडी में जंगलात के मुख्य कार्यालय में कैम्प क्लर्क नियुक्त हो गये। चाहे ये अपनी दयानतदारी तथा मेहनत के लिए काफी प्रसिद्ध तथा आदरणीय माने जाते थे, परन्तु विभाग के दूसरे अधिकारियों/कर्मचारियों की बद-दयानती तथा रिश्वतखोरी के कारण इस नौकरी से उक्ता गये और छ: महीने से अधिक समय तक वहां न टिके। इन्होंने यह नौकरी छोड़ दी और मिल्ट्री स्टोर में स्टोर-कीपर नियुक्त हो गये। अध्यापन परन्तु यह भी अल्पकाल तक ही मिला। आज़ादी की भी लहर ज़ोरों पर थी और इनमें बलिदान की भावना तो थी ही, साथ ही इनका लोक-सेवा में रुचि जागी कि गरीबों के लिये दवाइयां बना कर उनका ईलाज किया जाये। अत. इन्होंने नौकरी छोड़ दी।

1919 ई० भारत के राष्ट्रीय इतिहास का भीषण क्रांतिकारी युग था। जलियांवाले बाग की घटना ने भारतवासियों के दिल-दिमागों को हिला कर रख दिया था। डा० गुप्ता जी भी इससे प्रभावित हुए तथा इसी वर्ष जफ़रवाल कांग्रेस कमेटी जिला सियालकोट के सदस्य बन गये। 1924 ई० में रावलपिंडी कांग्रेस कमेटी की अलग-अलग तहरीकों में बढ़-चढ़ कर भाग लिया। 192 -24 ई० रावलपिंडी में नशाबन्दी का आंदोलन शुरू हुआ। इन्होंने इसमें भी बढ़-चढ़ कर भाग लिया और रावलपिंडी के डूहंगी खूह ई" बाजार में नशाबन्दी को ये भर पिकटिंग की। जिसके लिये इन्हें बन्दी बना लिया गया। अलग-अलग राष्ट्रीय नेताओं के साथ इनकी भेंट हुई। गांधी जी के व्यक्तित्व से सब से अधिक ये प्रभावित हुए। और आगे जो कुछ भी किया गांधी जी के आदर्शों तथा सिद्धान्तों को सामने रखकर किया। वे अति सादा जीवन व्यतीत करने लग गये तथा खादी को अपना लिया।

इक्कीस वर्ष की आयु में इनका विवाह वेली राम जी की सुपुत्री के साथ हुआ। वीरां देवी प्रसिद्ध देशभक्त लाला देसराज जी की भतीजी थीं। इसी लिये आज़ादी की भावना उनमें भी कूट कूट कर भरी हुई थी। इसी प्रकार गुप्ता जी को उचित जीवन साथी मिल गया। इनकी ससुराल के लोग आरम्भ से ही जम्मू निवासी थे और इनके चाचा लाला बोधराज जी जम्मू में ही कारो-बार करते थे।

1930 ई० में गुप्ता जी अपने परिवार के साथ जम्मू आ गये और आजीवन जम्मू के लोगों के अंतरंग बनकर जिये। यहां रोज़ी-रोटी की समस्या सुलझाने के सिलसिले में इन्होंने ऐसा कार्य आरम्भ किया, जिसमें लोक-सेवा मुख्य थी। 1931-32 ई० में इन्होंने आंखों की प्रसिद्ध दवा "गुप्ता आई लोशन" का आविष्कार किया और "गुप्ता आई लोशन फार्मेसी" स्थापित की। जहां सैंकड़ों रोगियों का रोज़ मुफ्त इलाज होता। किन्तु दवाइयों के लिये न्यून मात्र पैसा लिया जाता।

1930 ई० के दिनों में हिन्दू-मुस्लिम बहिष्कार की घटना हुई। दोनों सम्प्रदायों के लोगों ने एक-दूसरे का बाइकाट किया हुआ था। इस वातावरण में कनक मंडी के चौक में गुप्ता जी एक घड़े में पानी और गिलास लिए आवाज़ें दे रहे थे," एक हिन्दू का पानी मुसलमानों के लिये"। यह बड़ी हैरानगी की बात थी। आखिर हिम्मत जुटा कर एक मुसलमान मिस्त्री मुहम्मद शफी ने पानी पिया। कुछ और लोगों ने भी पानी पिया। इतनी देर में कुछ हिन्दु आ पहुंचे और आते ही घड़ा तोड़ डाला। दूसरे दिन पुनः वही स्वर गूंजा तो कुछ कट्टर हिन्दुओं से रहा न गया। उन्होंने डा० गुप्ता को डांट पिलाई और जाने से मार देने की धमकी भी दी। दुर्भाग्यवश इसी बीच हिन्दू-मुस्लिम फसाद शुरू हो गया। डा० गुप्ता कनक मंडी के चौक में एक दुकान पर खड़े थे कि मुसलमानों का एक हजूम "तारा-ए-तकबीर" कहते हुए कनक मंडी की ओर बढ़ने लगा। इससे पहले कि वे डा० गुप्ता पर टूट पड़ते, मिस्त्री मुहम्मद शफी ने डा० गुप्ता को अपनी चौड़ी छाती तथा देह की आड़ में छिपा लिया और कहा, "बाबू जी आपने कहा था कि "एक हिन्दू का पानी मुसलमानों के लिये।" आज एक मुसलमान का लहू एक हिन्दु के लिये"। और चिल्ला कर हजूम से बोला, "खबरदार यदि किसी ने इन्हें हाथ भी लगाया।" फिर उसने उन्हें उसी प्रकार छिपाये हुए एक सुरक्षित हिन्दू मोहल्ले में पहुंचा दिया। इस प्रकार डा० गुप्ता जी का अच्छा व्यवहार, स्नेह तथा इनसान-दोस्ती की नेक भावना उस समय के कट्टरपंथी मुसलमानों को भी बलिदान की शिक्षा दे गई।

इनकी सामाजिक तथा आर्थिक गतिविधियों के साथ-साथ गुप्ता जी की राजनैतिक गतिविधियां भी जारी रहीं। 1936 ई० में "गाय-आंदोलन" हुआ जो 36 दिन चला। गुप्ता जी ने इस आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभाई। इस प्रकार 1943 ई० में महाराजा हरि सिंह के राज्य-काल में आटे की महंगाई के विरुद्ध जम्मू के लोगों ने "रोटी आंदोलन" आरम्भ किया। बरसती गोलियों में भी डा० गुप्ता ने अपनी दुकान इस लिये खुली रखी क्योंकि वहां रोगी खड़े थे। इसी काल में सफाई कर्मचारियों का आन्दोलन शुरू हो गया, जिसका नेतृत्व डा० गुप्ता ने किया लोक-सेवा तथा समाज-सुधार की भावना से प्रेरित

डा० गुप्ता ने 1943 ई० में एक साप्ताहिक समाचार पत्र "गुप्ता" के नाम से निकाला।

जिस प्रकार अपने जीवन में आने वाले हर मोड़ तथा कठिनाई में गुप्ता जी ने बड़ी सादगी, साफ मन, स्नेह तथा भाई-चारे की भावना से काम किया, उसी सादगी के साथ उन्होने अपने बच्चों का भरणपोषण किया तथा पारिवारिक दायित्व निभाये। वे फ़िज़ूल के रस्मों-रिवाजों, शाही खर्चों, झूठे दिखावों और कुरीतियों के विरुद्ध थे। इसके लिये वे अपनी मिसाल खुद बन गये। गुप्ता जी ने अपनी बड़ी बेटी तारा देवी का विवाह निहायत सादा तरीके से किया। इस विवाह की चर्चा समाचार पत्रों में भी हुई। इस सराहनीय कार्य के लिये बहुत से नेताओं ने गुप्ता जी को बधाई दी। यह विवाह 1945 ई० में हुआ। बारात में कुल ग्यारह लोग थे, जिन्हें भोज में मक्की की रोटी और सरसों का साग दिया गया। दहेज में खादी के कुछ वस्त्रों के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं था। "महाजन समाचार" लाहौर ने "जम्मू में आदर्श विवाह" के शीर्षक से एक लम्बे सम्पादकीय में डॉ० गुप्ता की सराहना की। अपने 21 मार्च, 1946 ई० के अंक में इस समाचार-पत्र ने पुन: इस विवाह की चर्चा की, शीर्षक था— "जम्मू में दो काबले फख़् शादियों से जाति की सरबुलंदी, बारात और बारातियों की खातिर-तवाजा के मुताबिक नेक मिसालें।" इसी प्रकार "वकील" श्रीनगर ने भी बधाई दी। इन्होंने अपनी दूसरी बेटी राज देवी का विवाह 15 अगस्त, 1965 ई० में बड़े सादे ढंग से किया। और दोनों बेटों डॉ० केवल कृष्ण तथा डॉ० भारत भूषण के विवाह भी सादा ढंग से किये। डॉ० गुप्ता के इन नेक कार्यों की लोगों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की।

डा० गुप्ता का सबसे बड़ा कारनामा था समाजी बुराइयों के विरुद्ध युद्ध लड़ना। इसके लिये उन्होंने अपने हम-ख्याल मित्रों-साथियों से मिलकर 1951 ई० में "पब्लिक सुधार सभा" के नाम से एक सभा की स्थापना की। जो बाद में "सोशल सुधार सभा" हो गई। डॉ० गुप्ता जब तक जीवित रहे, इसके संस्थापक प्रधान बने रहे। इस सभा ने समाजी बुराइयों के उन्मूलन पर विशेष बल दिया।

इसके अतिरिक्त जिन बातों के लिये जम्मू-कश्मीर के हिन्दू, सिख, मुसलमान तथा ईसाई सामूहिक रूप से प्रभावित होते थे उनके इस मंच से अपनी बात कहते थे। श्रीनगर में 'मुए मुकद्दस' की चोरी होने पर इस सभा ने अपना भीषण रोष प्रकट किया। यह सभा दहेज की नुमाइश, नशीले पदार्थों पर पाबंदी, किरायेदारों तथा मालिकों के बीच मुकद्दमेबाजी, तनाव तथा नये मकानों के लिये जमीनों की समस्याओं पर भी सरकार एवं विधायकों का ध्यान आकर्षित करवाती रही। सभा के इन सभी प्रयासों में डॉ० गुप्ता सबसे आगे रहे।

इन्होंने अपनी गतिविधियों का क्षेत्र बढ़ाया और इसकी शाखायें श्रीनगर, बटोत, पुंछ तथा रियासी में भी स्थापित कीं। यह इसी सभा के प्रयत्नों का परिणाम था कि 1955 ई० में डा० साहब की अगवाई में सभा के कार्यकर्ताओं तथा डॉ० गुप्ता के प्रशंसकों ने रंग एवं कीचड़ को छोड़ कर खुशबूदार फूलों और हलके रंगों से होली का त्योहार मनाया। और साथ ही लोगों को भी गंदगी, कीचड़ तथा शराब पिये विना त्योहार मनाने का अनुरोध किया।

"गुप्ता आई लोशन", मुफ्त इलाज तथा समाज सुधार जैसी गतिविधियों के अतिरिक्त डॉ० एल०सी० गुप्ता ने जनकल्याण के तीन चिरस्मरणीय कार्य किये।

यह कार्य न केवल महत्वपूर्ण हैं अपितु इनके प्रभाव तथा परिणामों के कारण डॉ० गुप्ता के अपने व्यक्तित्व पर भी रौशनी पड़ती है।

1. महाशीला देवी की मूर्ति-स्थापना, मंदिर गेट तथा भवन का निर्माण,
2. शेरे डुग्गर लाला हंसराज जयन्ती समारोह, उनकी मूर्ति की स्थापना पार्क तथा रीडिंग-रूम स्थापित करना।
3. सन्नासर डिवेलपमेंट कौंसल बनाना, बावलियों तथा पर्यटकों के लिये हट एवं आवास का निर्माण।

डॉ० गुप्ता जैसा बहुआयामी विशिष्ट व्यक्तित्व जम्मू-कश्मीर के सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक तथा साहित्यिक गतिविधियों का प्राण था। धर्म निरपेक्ष गुप्ता साहब प्यार तथा स्नेह मानव मात्र के लिये था। और हर भाषा के साहित्य से गहरा उनका जुड़ाव रहा। यही कारण था कि वे न केवल पूरी रियासत वरना देश भर की विभिन्न संस्थाओं, संगठनों के सदस्य, पदाधिकारी, और संरक्षक भी थे। वे सुधार सभा के संस्थापक प्रधान के अतिरिक्त कम से कम तीस सोसाइटियों-संस्थाओं एवं सभाओं के संरक्षक भी रहे। वे कांग्रेस के भी सक्रिय सदस्य थे।

1932 ई० में कांग्रेस कमेटी के सदस्य थे, बाद में संयुक्त सचिव नियुक्त हुए। नेशनल कान्फ्रेंस बनने के पश्चात् वह सिटी नेशनल कान्फ्रेंस के भी सदस्य रहे तथा इसके प्रधान भी बने।

गांधी जी पर इनकी बड़ी श्रद्धा थी। 4 अगस्त 1947 ई० में जब महात्मा गांधी जम्मू आये तो उनके रहने, खाने-पीने, तथा अन्य कार्यों के प्रबंध के लिये एक कमेटी बनाई गई, डॉ० साहब भी उसके सदस्य थे। जून 1970 ई० में जम्मू कश्मीर सर्कल के आल इंडिया पोस्टल इम्पलाइज़ युनियन, पोस्ट-मैन ऐंड क्लास फोर्थ कर्मचारियों की ओर से सरकार के सामने जो दस मांगें

रखी गई थीं, डा० गुप्ता ने न केवल उनका समर्थन ही किया अपितु इनकी वार्षिक गोष्ठी का उद्घाटन भी किया तथा इनके जलूसों की अगवाई भी की।

डॉ० गुप्ता जी आजीवन लोक-सेवा से जुड़े रहे, चाहे वह मनुष्य मात्र की हो अथवा समूचे समाज या राष्ट्र की। उन्होंने सेवा को सबसे उत्तम माना, उन्होंने त्याग, सहनशीलता एवं नम्रता जैसे विशिष्ट गुणों को अपने चरित्र में आत्मसात कर लिया था। बहुत बार इन्हें सरकारी तथा गैर-सरकारी पदों के लिये प्रस्तावित किया गया। महाराजा हरि सिंह तथा बख्शी गुलाम मोहम्मद दोनों ने डॉ० गुप्ता को वश में करना चाहा, परन्तु वे सफल न हो सके। डा० गुप्ता का बस यही कहना था कि—"मैं लोगों के बीच रहना चाहता हूं, पद प्राप्त करके आदेशात्मक ढंग अपनाना मैं अच्छा नहीं समझता।" आंखों के रोगों का विशेषज्ञ होने पर भी इन्होंने सरकारी नौकरी पसंद नहीं की तथा "गुप्ता आई लोशन" बनाकर इससे अवैध धन कमाने का कभी प्रयास नहीं किया। अपितु अपने असूलों पर डटे रहे तथा लाखों रोगियों को निरोग करके उनके आशीर्वाद प्राप्त किये। शिव राम शर्मा ने ठीक ही लिखा है—इन्होंने अलग-अलग तरीकों से जो कमाई की, वह जरूरतमन्दों की मदद करने में खर्च करते रहे और अपनी निजी धन सम्पदा भी अच्छे कार्य पर ही लगा दी। ऐसे कार्य करके वे बहुत प्रसन्न रहते थे। जब कभी कोई पूछता, "डॉ० साहब, कुछ अपनी चिंता भी है?"—तो झट से उत्तर देते, "जी हां! पिता को हर समय अपनी संतान की ही चिंता रहती है, और पिता कोई मामूली मनुष्य नहीं। वे एक ऐसी शक्ति है, जो हर किसी के भीतर-बाहर से भली प्रकार परिचित है। हर किसी को अपने किये काम का बदला स्वयं से पूछना चाहिये। मनुष्य को साफ दिल एवं नेक-नीयती होना चाहिए।"[1]

डॉ० गुप्ता ने जन-सेवा दो प्रकार से की। एक सामाजिक और सामूहिक, दूसरी निजी रूप में। असल में यह दो भिन्न-भिन्न शीशे हैं, जिनमें डॉ० गुप्ता के व्यक्तित्व की झलक साफ दिखाई देती है। ऐसी अनेक घटनायें जो जनप्रिय नेता की सेवाओं पर रोशनी डालती हैं।

डॉ० एल० सी० गुप्ता कुछ विशिष्टताओं के धनी थे जो उस समय के लोगों में विरला ही था। एक समय जम्मू में प्लेग की बीमारी फैली। यह बीमारी वैसे भी छूत की बीमारी समझी जाती है आग देने में सम्मिलित होना तो दूर की बात है उस की खबरगीरी करना भी घातक समझी जाती। इस बीमारी से बहुत से अनाथ, असहाय लोग, मर गये। डॉ० गुप्ता ने स्वयं उन सबका अंतिम संस्कार किया। यही नहीं,

1. सच्चा सेवाकार : शिव राम शर्मा, पन्ना—35

बीमारी के दौरान वे रोगियों का हाल-चाल भी पूछते तथा उनका भरसक इलाज भी करवाया, आर्थिक सहायता भी दी। यह बात भी उल्लेखनीय है कि डॉ० साहब ने इस प्रकार के रोगियों का जहां तक हो सका, इस प्राकृतिक प्रकोप से जम्मू तथा इसके आस-पास रहने वाली जनता के बचाव के प्रयास किये। 25 अप्रैल, 1952 ई० उनके सेवा भाव की प्रशस्ति में "मिलाप" दिल्ली में एक समाचार प्रकाशित हुआ—इन दिनों जम्मू में जब भी कोई लावारिस पुरुष-महिला या बच्चा बुखार या किसी अन्य छूत की बीमारी से मरता है उसे शमशान तक पहुंचाने के लिये कोई सहमत नहीं होता, परन्तु "पब्लिक सुधार सभा जम्मू" के श्री डॉ० एल० सी० गुप्ता सिटी चौक वाले लावारिस शवों को अपने कंधे पर उठाये अकेले ही शमशान में ले जाकर दाह-संस्कार करते हैं तथा इसका सारा खर्चा अपनी जेब से वहन करते हैं। पिछले दिनों डॉ० गुप्ता ने सफाई करने वालों की बस्ती जाकर हाथों में झाड़ू लेकर टोकरा उठाया, अपने कुछ साथियों से मिलकर उन्होंने स्वयं मल तथा गंदी नालियों की सफाई की।"

डा० गुप्ता में एक और बड़ी बात थी। चलते समय सड़क पर खड़े रोटी सिग्रेट, कागज़ के टुकड़े, फलों के छिलके, कांटे या रोड़े देखते तो उन्हें नाली में फैंक देते, ताकि किसी को कष्ट न पहुंचे। शहर में किसी का खोया हुआ बच्चा इन्हें मिल जाता तो झट से उनके परिवार जनों की तलाश में निकल पड़ते। और जब तक बच्चा अपने घर न पहुंच जाता, यह सुख का सांस न लेते। इनमें बलिदान भावना प्रबल थी। वे विदेशी आक्रमणों के समय सैनिकों के लिये रक्तदान में आगे रहे। गांधी भवन जम्मू के निर्माण काल में वे अपने परिवार के अन्य लोगों के साथ भरपूर गर्मियों में बिना मज़दूरी लिये काम करते रहे और तीन महीनों तक कई कई घंटे इंटें और पत्थर ढोते रहे।

वे एक आला दर्जे के मेहमान नवाज भी थे। 1940 ई० में गुजरात (वर्तमान दक्षिणी पंजाब) से इनके बहनोई ने इनके पास दो अतिथि भेजे रात अधिक हो चुकी थी। ऐसे में अन्य कोई व्यवस्था न हो सकी थी। अतः मेहमान को खिला कर दोनों पति पत्नी भूखे ही सो गये। वे मस्त-मलंग रहते थे। ऐसे बहुत से अवसर आये जब इन्हें बड़ी राशियां भेंट की गईं, किन्तु इन्होंने वह स्वीकार न कीं। रोटी आंदोलन के सिलसिले में एक समय वह भी आया जब इनको अपनी जान के लाले पड़ गये। धमकी एवं जबरदस्ती करने के पश्चात् इन्हें लालच भी दिया गया, किन्तु इनके पांव अडिग रहे? इलाज के सिलसिले में बहुत से धनी रोगियों या उनके परिवार वालों ने इन्हें उपहार के रूप में कुछ न कुछ देना चाहा किन्तु उन्होंने अस्वीकार कर दिया।

कई बार इनके सच बोलने पर इनके अपने भी रुष्ट हो गये। परन्तु इन्होंने झूठ बोलना मंजूर न किया।

विनमृतावश इन्होंने कभी भी अपने आपको दूसरों से बड़ा नहीं समझा। निकृष्ट से निकृष्टतर कार्य करने से भी कभी पीछे नहीं हटे। कभी शान नहीं दिखाई। कभी दूसरों को छोटा या नीचा नहीं समझा। एक समाचार पत्र ने इनके विरुद्ध बहुत बुरा लिखा। डॉ० गुप्ता ने वजाये रोष प्रकट करने के, उसका धन्यवाद किया कि इससे उन्हें अपनी गलतियों तथा भूलों की ओर ध्यान देने का अवसर मिला। जब कभी इनसे कोई भूल हुई, इन्होंने खुले आम उसे स्वीकारा। कभी ऐसा अवसर नहीं आया जब अपनी भूल सुधारने तथा सच को झूठ साबत करने का प्रयत्न किया हो। यह सदा असूलों तथा समय के पाबंद रहे। बहुत बार ऐसा भी हुआ कि जलसे के आयोजक समय पर न पहुंचते, किन्तु यह सदा ठीक समय पर पहुंच जाते।

सर्व धर्म समभावी डॉ० गुप्ता अपने पड़ोसियों के बड़े चहेते परम सहयोगी थे। हर सभा या स्थान पर वे सादा लिवास में उपस्थित रहते थे। बड़ी से बड़ी रोष पूर्ण परिस्थिति में बात को हंस कर टाल देते। दूसरे की ज्यादतियों को साफ देखते हुए भी शिकायत नहीं करते थे। बच्चों से बहुत ही स्नेह था। उन्हें अक्सर पुरस्कार, और टाफियां बांटा करते थे। कई बार लतीफे/चुटकले सुनाकर लोगों में खुशियां बांटते। वे दुबले-पतले व्यक्ति के रूप में लौह पुरुष के रूप में जम्मू-कश्मीर की धरती उनकी चिर ऋणी रहेगी।

अनुवाद : रत्न कलसी
जम्मू।



दीवान किरपा राम

दीवान किरपाराम

□ ओ० पी० शर्मा

डोगरा इतिहास की अनमोल पुस्तक "गुलाबनामा" के लेखक दीवान किरपा राम जम्मू—कश्मीर राज्य की प्रसिद्ध हस्ती थे। यह प्रमाणिक इतिहास उन्होंने महाराजा रणवीर सिंह के राज्यकाल में फारसी में लिखा। यह पुस्तक महाराजा गुलाबसिंह, जिन्होंने जम्मू-कश्मीर रियासत की नींव रखी और इस छोटे राज्य को लद्दाख, गिलगित तथा स्कारदु तक फैलाने, के कारण उनके शौर्य और पराक्रम का जीवंत दस्तावेज है। जम्मू-कश्मीर रियासत के प्रधान मंत्री के पद पर रहने के कारण उन्हें वे सभी प्रामाणित रिकार्ड जिन में महत्वपूर्ण समझौते घटनाओं के ब्यौरे और सेना की साहसिक कार्यवाही का जिकर था, सहज प्राप्त थे।

अविभाजित पंजाब के अमीनावाद प्रांत में गुजरांवाला जिला में एक सभ्रांत दीवान परिवार में जन्मे, दीवान कृपाराम के परिवार वालों के सम्बन्ध महाराजा गुलाबसिंह के प्रारम्भिक जीव से लेकर राजनैतिक गतिविधियों तक जुड़े थे। सर लैपल ग्रिफनस की पुस्तक "पंजाब के मुख्य" में लिखा है कि महाराजा गुलाबसिंह ने प्राय: इसी परिवार से अपने दीवान अथवा प्रधान मन्त्री लिए। अत: जम्मू-कश्मीर में डोगरा राज्य की सभी प्रकार की गतिविधियां श्रेय इन्हीं परिवा वालों को जाता है।

अनमोल विरासत :—

यदि यह कहा जाए कि दीवान किरपाराम को दीवान की नौकरी उनकी विरासत से मिली तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। दीवान किरपाराम के दादा, दीवान अमीरचन्द बुद्धिमान, चतुर और कुशल राजनैतिज्ञ थे। उन्हें महाराजा का विश्वास प्राप्त था। उन्हें, सन् 18 3 में महाराजा का कॉरकून अथवा मैनेजिंग एजेंट भरती किया गया। जब गुलाबसिंह जम्मू के राजा बने, तो

उन्होंने अमीरचन्द को मॉदर-उल-माहम अथवा प्रधान मन्त्री के पद पर नियुक्त किया। महाराजा गुलाब सिंह की सफलता और ख्याति को शिखरों तक ले जाने में दीवान अमीरचन्द को महत्वपूर्ण भूमिका मानी जाती है।

दीवान अमीरचन्द के लड़के, ज्वाला सहाय ने अपने पिता का रिक्त स्थान सन् 1836 में ग्रहण किया। वह महाराजा गुलाबसिंह के सभी युद्धों में उनके सहायक बने और सलाहकार भी रहे। पूरे तीस वर्षों तक, जम्मू-कश्मीर रियासत के राजाओं के विश्वास पात्र मन्त्री के पद पर, निष्ठा और कुशल प्रशासक बने रहे। सन् 1865 में उनके सुपुत्र किरपाराम ने यह कार्यभार सम्भाला और सन् 1876 में अपनी आजीवन इसी राज्य की सेवा की।

श्री किरपाराम का जन्म सन् 1832 में हुआ और 24 वर्ष की छोटी अवस्था में ही महाराजा रणवीर सिंह के दीवान बने। महाराजा रणवीरसिंह ने सन् 1856 (18 फाल्गुन, 1912 विक्रमी) में जम्मू-कश्मीर राज्य की बागडोर सम्भाली। उनके तुरन्त राज्याभिषेक के बाद, किरपाराम को मनसब दीवाने से नवाजा गया, और उन्हें बहुमूल्य खिल्लत तथा आकर्षक उपहार दिये गए। मुबारिक मंडी के विशेष दरबार में दीवान किरपाराम ने महाराजा रणवीर सिंह को राजकार्य के लिए उचित परामर्म दिये।

सम्मान :—

दीवान किरपाराम को प्रथम मान सन् 1850 में मिला जब महाराजा गुलाबसिंह ने भारत के गवर्नर जनरल लार्ड डल्हौजी से वजीराबाद में मुलाकात की। जिन्हें अंग्रेज़ गवर्नर जनरल ने खिल्लतें बांटी थीं। वे भी उनमें से एक थे, रणवीरसिंह के राजतिलक के एक मास पूर्व 1856 में शेर गड़ी के कार्यालय, श्रीनगर में भयंकर आग लगी। इस आग में राजस्व और अन्य सरकारी रिकार्ड को क्षति पहुंची। राजकोष को भी नुकसान पहुंचा। इस घटना के तुरन्त बाद दीवान साहब वहां पहुंचे और उन्होंने अपनी बुद्धिमत्ता से 26 लाख के कोष से केवल मात्र 500 रुपये का नुकसान होने दिया। मुख्य कार्यालय से प्रतिलिपियां लेकर राजस्व और बाकी का सरकारी रिकार्ड पुन: जैसे का तैसा बना लिया। इसकी विस्तृत चर्चा "तारीखे हसन" में मिलती है।

सन् 1882 में कश्मीर की घाटी में अकाल पड़ा। एक खिरवाला धान 5 से 6 रुपये में बिकने लगा। उस समय दीवान साहब ने अकाल से तुरन्त राहत पाने के लिए कुछ ठोस कदम उठाये। इन चुस्त-दुरस्त कदमों के फल-

GULABNAMA

OF
DIWAN KIRPA RAM
a history of
MAHARAJA GULAB SINGH
of Jammu & Kashmir



Foreword by
Dr. Karan Singh
Translated
from Persian &
annotated by
Sukhdev Singh Charak

गुलाबनामा

स्वरूप दुर्भिक्ष हटा। इस घटना के तीन वर्ष बाद वह सन् 1865 में कश्मीर के गवर्नर बनाये गये। इस पद पर वह डेढ़ साल तक बने रहे। उन्होंने बार-बार अकाल समस्या को रोकने के लिए राजस्व और प्रशंसनीय सुधार किये। जन-गणना करवाई। प्रति व्यक्ति साप्ताहिक राशन निर्धारित किया गया। पंजाब से गेहूं खरीद कर कम दरों पर लोगों में बेचा गया। कश्मीर प्रांत को पांच ज़िलों में बांटा गया। इन जिले के हैडक्वार्टर श्रीनगर शोपेइयां, अनंत नाग, कामराज और बेहार में रखे गए। अनाज वितरक ढांचे को और अधिक सुदृढ़ बनाया गया। महाराजा रणवीर सिंह ने उनकी कर्मठता, कार्यकुशलता और विश्वास को परख कर राज्य प्रबन्ध के पूर्ण अधिकार उन्हें सौंप रखे थे।

दीवान किरपाराम नेक, बहादुर और कर्त्तव्यनिष्ठ थे। उन्होंने कार्य-कुशलता के कारण अनेक क्षेत्रों में ख्याति पाई। भारत में अंग्रेज अधिकारियों से रियासत के अच्छे सम्बन्ध बनाये। सेना पुनर्गठन ब्रिगेडों में किया। कमांड जनरल और सेना नायकों को सौंपी। स्कूलों में संस्कृत और फारसी लागू की गई। इस भाषा की पुस्तकों का उत्तम अनुवाद करवाया गया। रास्तों की मुरम्मत करवाई और डाक बंगले बनवाये।

सम्पूर्ण इतिहास :—

ग्यारह असूज 1933 बिक्रमी में मात्र 44 वर्षों की आयु में उन्होंने महाप्रयाण किया। उन्होंने अपने जीवनकाल में कुछ फारसी की किताबें लिखीं। उन का 'गुलाबनामा', जिसमें महाराजा गुलाब सिंह के जीवन, युद्धों और शासन का सम्पूर्ण इतिहास मिलता है 1865 में लिखा गया। यह अनमोल पुस्तक 1976 में श्रीनगर से प्रकाशित हुई और इसका दूसरा संस्करण 1919 में निकला। उन की एक और प्रसिद्ध किताब "गुलज़ारे कश्मीर" हैं जिसमें कश्मीर की जलवायु, व्यापार और उत्पादन का सम्पूर्ण ब्यौरा मिलता है।

गुलाबनामा का प्रकाशन "मुहाफज़े कश्मीर" प्रैस द्वारा हुआ जो एक सरकारी प्रैस है। इसके 432 पृष्ठ हैं। पुस्तक में सन् 1857 की घटनाएं तथा महाराजा गुलाबसिंह के परलोक सिधारने की घटनाएं हैं। उन्होंने लिखा है—महाराजा गुलाबसिंह एशिया में एक महान् योद्धा थे। वह कुशल राज-नीतिज्ञ थे। उन्होंने अपना जीवन एक सेनानायक से शुरू किया और अपने

पराक्रम से जम्मू-कश्मीर रियासत के निरंकुश शासक बने। कुछेक कमियों के बावजूद भी गुलाबनामा के महत्त्व को कम नहीं किया जा सकता। महान् इतिहासकार और राजनीतिज्ञ सरदार के० एस० पथिनर ने कहा है—यद्यपि पुस्तक फॉरसी की सुन्दर और मंजी हुई भाषा में लिखी गई है लेकिन एक अद्‌भुत इतिहास जिस का मसौदा दीवान साहब ने असली रिकार्ड को लेकर पूरी लगन से बनाया है। ऐसा रिकार्ड अब मिल पाना असम्भव है।" अब इस पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद प्रोफैसर डॉ० एस० एस० चाड़क ने किया है।

जो हमारे उज्जवल इतिहास हमारी सभ्यता, संस्कृति और कलाओं का साक्षी है। रोमांचकारी वीर गाथाओं, कुशल राजनीति और श्रेष्ठ शासन-प्रबन्ध की जानकारी इतिहास केवलमात्र ही नहीं देता बलिक युवा पीढ़ी को नया इतिहास रचने की भी प्रेरणा देता है। □

पं० श्रीनिवास मंगोत्रा

वी० पी० शर्मा

इस शताब्दी के आरम्भ से ही सामाजिक, धार्मिक तथा राजनैतिक गतिविधियों में उल्लेखनीय भूमिका रही। पं० श्रीनिवास मंगोत्रा का नाम अग्रगण्य है।

पं० श्रीनिवास जी का जन्म 1895 ई० में ग्राम पटोली में हुआ। आपके पिता पं० जगतराम जी एक विख्यात व्यापारी थे जिन्होने पटोली से जम्मू शहर में आकर अपना कारोबार आरम्भ किया। वह "पटोलीवाले शाह" के नाम से जाने जाते थे।

जम्मू नगर में पहले तो कच्चे एक मंज़ला मकान ही होते थे। केवल महाराजा के महल और गिने मिने घर ही पक्की ईंटों से बनाए हुए थे। पुरानी मण्डी में सबसे पहला पक्का दो मन्ज़ला मकान पं० श्रीनिवास के पिता ने ही बनवाया था। सिटी चौक से जो सड़क कनक मण्डी की ओर जाती है उस के बाएं किनारे पहली बड़ी दुकान इन्हीं की थी। यह मकान और दूकान आज भी इस वंश के समृद्धि चिन्ह विशेष हैं।

पं० श्री निवास जी ने F.A. तक विद्या प्राप्त की। 1909 ई० में आपका विवाह श्रीमती विद्या देवी से हुआ। 1910 ई० में आप के पिता जी वज़ीराबाद में रेल के हादसे में मारे गए जबकि श्रीनिवास जी बाल-बाल बच गए। दोनों पिता पुत्र उस समय व्यापार के सिलसिले मे लाहौर गए हुए थे।

पिता की मृत्यु के पश्चात् कारोबार का सारा दायित्व पं० श्रीनिवास जी ही ने सम्भाला जिस के कारण वह आगे न पढ़ सके।

1919 में महात्मा गान्धी जी के बन्दी बनाए जाने पर सत्याग्रह के लिए जो अपील की गई उस से प्रभावित होकर पं० श्रीनिवास जी एक सच्चे गांधीवादी बन गए। उसी दिन से उन्होंने विदेशी वस्त्र पहनने बन्द कर दिए। सिर पर सफेद खादी की पगड़ी, कुर्त्ता पाजामा और रंगदार खादी की अचकन ही पं० श्रीनिवास की पहचान बन गए। जीवन भर उन्होंने खादी ही अपनाये रखी और महात्मा के आदर्शों का प्रचार करते रहे।

वह पंजाव इंडस्ट्रीयल व कमर्शियल बैंक की जम्मू शाखा के डाइरैक्टर रहे। 1922 ई० में उन्होंने Asiatic Import and Export कम्पनी का गठन किया जिसकी शाखाएं अमृतसर और लंदन में कायम कीं। यह कम्पनी सात वर्ष के बाद बन्द कर दी गई। आप डोगरा सदर सभा के सक्रिय सदस्य रहे। 1930 ई० में वह इसी वर्ष महाराजा हरिसिंह जी ने डोगरा सदर सभा को एक (Unlawful) संस्था करार देकर सभा को बन्द कर दिया। लाहौर में आल इण्डिया कांग्रेस का वार्षिक सम्मेलन होने वाला था तो सभा के मन्त्री ला० हंसराज जी महाजन ने एक पत्र कांग्रेस के अधिकारियों का नाम लिखा कि "रियासत जम्मू" कश्मीर में डोगरा सभा वही कार्य कर रही है और वही इसके उद्देश्य हैं जो कि कांग्रेस के है इसलिए सभा के चार डेलीगेटों को आमन्त्रित किया जाए।" कांग्रेस की ओर से जवाब मिला कि अभी तक उन्होंने अपना कार्यक्रम अंगरेज़ शासित भारत (British India) तक ही सीमित रखा है इसलिए वह किसी स्वदेशी रियासत के डेलीगेट नहीं बुला सकते।

महाराजा हरिसिंह जी ने 9 मई 1930 ई० को निम्नलिखित आदेश जारी किया :—

"It has been brought to my notice that in its letter, dated the 13th of November 1929 to the address of the All India Congress Committee, Lahore, the Dogra Sabha of Jammu described itself to be "the Congress Committee of Jammu and Kashmir State" and whereas contrary to the conditions laid down for all Sabhas in the State, the Dogra Sabha makes a practice of taking active part in politics. I hereby direct that the Sabha be dissolved"

JAMMU
9th May, 1930.

Sd. HARI SINGH
Maharaja
G.C.S.I., K.C.V.O

जब पुलिस यह आदेश लेकर डोगरा सदर सभा के दफतर में पहुंची वहां प्रधान, पं० श्रीनिवास जी और सभा के कुछ सदस्य मौजूद थे।

श्री निवास मंगोत्रा जी सनातन धर्म सभा, डोगरा ब्राह्मण प्रतिनिधि सभा और डोगरा संस्था के सक्रिय सदस्य और प्रधान भी रहे।

अपनी मातृभाषा डोगरी के लिए उन्होंने बड़ा योगदान दिया। वे एक प्रबुद्ध चिन्तक थे।

धार्मिक ग्रंथों में उनकी विशेष रुचि थी। उनका विचार था कि श्रीमद्-भगवदगीता का दूसरा अध्याय ही इस का सार है। गीता को वह हिन्दू धर्म का एक अत्यन्त ओजपूर्ण पुण्य कृति मानते थे जिसमें ब्रह्माण्ड के ज्ञान के अतिरिक्त आत्मविधा के गूढ़ और पवित्र तत्वों को थोड़े में ही स्पष्ट रीति से समझाया गया है। संसार के दुःखी मनुष्यों को शान्ति प्रदान करके उन्हें निष्काम कर्त्तव्य में लगे रहने का सबक सिखलाने वाला कोई दूसरा ग्रंथ संसार भर के साहित्य में नहीं मिलता। श्रीनिवास मंगोत्रा ने दूसरे अध्याय का डोगरी अनुवाद किया और उसकी दो हज़ार कापियां छपवा कर मुफ़्त में बांटीं।

वे सनातन धर्म नाटक समाज के संस्थापक और प्रधान थे राम नाटक में वे बड़ी दिलचस्पी लेते थे और इसी प्रकार दूसरे धार्मिक नाटकों में भी। दीवानों के मन्दिर में नाटक दर्शाने के लिए 'मन्डवा' (Stage) बनवाने में उन्होंने बड़ा योग-दान दिया।

जीवन भर वे जब तक चलने फिरने के काबल रहे, राम नाटक और दूसरे धार्मिक नाटक देखने अवश्य जाते रहे।

डोगरा ब्राह्मणों में विवाह इत्यादि समाज में उत्सवों पर बहुत खर्च होता था। बहुत कुरीतियां थीं। दहेज़ प्रथा बढ़ती जा रही थी। इन सामाजिक कुरीतियों को रोकने के लिए पं० श्रीनिवास जी ने ब्राह्मण सभा की जनरल कौंसिल की मीटिंग बुलाई। इन ही की प्रधानता में सभा ने सामाजिक कुरीतियों पर पाबन्दी लगा दी।

जम्मू-कश्मीर बैंक की स्थापना होने पर 1938 ई० में पं० श्रीनिवास जी इस बैंक के Subscriber Director नियुक्त हुए।

वे बालक बालिकाओं की शिक्षा में गहरी दिलचस्पी लेते थे। 1942 में आप के यत्न से श्री सनातन धर्म हाई-स्कूल स्थापित हुआ जिसकी मैनेजिंग कमेटी के वह सदस्य रहे।

आप युवाओं की सह-शिक्षा (Co-education) के विरुद्ध थे इस लिए उन्होंने राए बहादुर ला० मुलकराज गंदोत्रा के सहयोग से जम्मू में सबसे पहले महिला कालेज की स्थापना की। जिसका नाम "महारानी महिला कालेज" था। ला० मुल्क राज गंदोत्रा इसके प्रधान और पं० श्रीनिवास जी कालेज की

मैनेजिंग कमेटी के उप-प्रधान रहे। 1953 ई० में इस कालेज का प्रबन्ध शेख अब्दुल्ला की सरकार ने अपने हाथों में लिया और इसके स्थान पर महिला कालेज परेड-ग्राउंड की स्थापना की। जिसका नाम गवर्नमैंट कालेज फार वूमैन रखा गया।

1948 ई० में पं० श्रीनिवास मंगोत्रा जम्मू नेशनल कान्फ्रेंस के प्रधान बने पर कुछ ही देर बाद उन्होंने यह पद त्याग दिया।

डोगरा सदर सभा का 18वां वार्षिक सम्मेलन 1930 में हुआ उस समय पं० श्रीनिवास जी इस सभा के प्रधान थे। वार्षिक सम्मेलन के प्रधान सरदार बुद्ध सिंह जी थे जिनके भाषण के उपरांत सभा ने कई प्रस्ताव पास किए। जिन मे पं० श्रीनिवास जी ने एक प्रस्ताव पेश किया कि रियासत में जल्दी से जल्दी एक विधान सभा (Legislative Assembly) बनाई जानी चाहिए जिससे रियासत के लोगों और महाराजा बहादुर में सीधा सम्पर्क कायम हो सके और जनता की मांगें भी महाराजा बहादुर तक पहुंच सकें।

सैयद उल्ला शाह वकील और ला० मुल्क राज सराफ़, पं० जिया लाल किलम, शेख अब्दुल हक डोगरा और महाशय राम चन्द ने प्रस्ताव का समर्थन किया। ठा० काहनसिंह बिलावरिया, ठा० पञ्जाब सिंह, ठा० सुचेत सिंह और लाला रूप चन्द नन्दा ने प्रस्ताव के खिलाफ़ भाषण दिए कि महाराजा बहादुर के अधिकार कम हो जायेंगे।

पं० श्रीनिवास जी ने कहा कि आज नहीं तो कल विधान सभा अवश्य बनकर ही रहेगी। प्रस्ताव बहुमत से पारित हुआ। पं० श्रीनिवास जी दूरदर्शी थे इसीलिए लोग उन्हें "मुफ़क्कर-ए-जम्मू" (जम्मू दार्शनिक) के नाम से पुकारते थे।

1930 में महात्मा गान्धी की गिरफ्तारी पर देश भर में हड़ताल हुई। विदेशी सरकार के खिलाफ़ प्रदर्शन हुए। भला जम्मू भी कैसे पीछे रह सकता था। यहाँ के देश भक्तों ने भी हड़ताल कर दी कालेज और स्कूलों के विद्यार्थियों ने जलूस निकाले।

पं० श्रीनिवास ने जो जम्मू शहर के माने हुए रईस थे, अपने घर के सभी सदस्यों, अपनी बहु बेटियों की बहु-मूल्य विदेशी साढ़ियां और दोनों पुत्रों के विदेशी वस्त्र इकट्ठे करके, पुरानी मण्डी चौक में होली जला दी। वह स्वयं तो पहले से ही खादी के वस्त्र पहनते थे।

इन की देखा देखी कई लोगों ने अपने विदेशी वस्त्र इसी होली में जला दिए और खादी अपना ली।

पं० श्रीनिवास जी बड़े गौ-भक्त थे 1970—71 ई० में वह गो-रक्षा समिति के प्रधान बने। चोरी छुपे कई लोग गाएं ट्रकों में भरकर बधिकों के बेच देते। समिति के कुछ सदस्यों ने ऐसे ही अवैध कार्य करने वालों को पकड़ कर मारपीट की और गाएें छुड़ा लीं। पुलिस ने इन सदस्यों को कानून अपने हाथ में लेने के जुर्म में गिरफ़तार कर लिया और सिटी थाना में बन्द कर दिया। प्रधान पं० श्री निवास जी जब इन्हें छुड़ाने सिटी थाना में गए तो वहां इन्हें भी गिरफ़तार कर लिया गया। और बड़े मजे की बात यह थी कि इनको गिरफ़तार करने वाले इनके अपने ही दामाद, पं० दुर्गा प्रसाद शर्मा थे, जो उस समय सिटी-इनस्पेकटर पोलिस के पद पर नियुक्त थे।

पं०श्रीनिवास जी ने थाने में भूख हड़ताल कर दी, जिससे सब बन्दियों को छोड़ दिया गया।

पं० श्री निवास जी एक उदार हृदय व्यक्ति थे सभी संस्थाओं को आर्थिक सहायता देते रहे। उन्होंने अखनूर में चिनाब नदी के तट पर एक मन्दिर भी बनवाया। 1956 से 1959 तक वह धर्मार्थ कौंसिल के सदस्य भी रहे।

20 दिसम्बर 1981 के दिन अपनी आयु के 86 वर्ष पं० श्रीनिवास जी ने काशी लाभ ऐसे पुण्य कार्यों से डुग्गर-भूमि को धन्य करते हुए।

□ वी० पी० शर्मा

पंडित प्रेमनाथ डोगरा

☐ चन्द्रमोहन शर्मा

मंदिरों की नगरी जम्मू थी आरती में न्याय, धर्म, राजनीति, शौर्य, कला तथा साहित्य के आलोक से जगमगाते आए अनगिनत दीपों में से सेवा, सद्भावना और क्रांति की अप्रतिम निराला विश्व बंधुत्व तथा आभा लिये, एक अन्य दीप पं० प्रेमनाथ डोगरा हैं। जिनका जन्म बीसवीं शती के महान डुग्गर सपूत पंडित प्रेमनाथ डोगरा ने जब जन्म लिया। तब रियासत राजनीति के षड्यन्त्रों में फंसकर एक अनिश्चयात्मकता के वातावरण में डोल रही थी तो से तो उस कठिन समय में डुग्गर रत्न पंडित प्रेमनाथ डोगरा ने नैतिक चरित्र, मानसिकबल, दूरदर्शिता और मातृभूमि के प्रति अटूट श्रद्धा एवं भक्ति के सहारे अपने देशभक्त निहत्थे साथियों के साथ एक सशक्त आंदोलन करके अपनी रियासत को पाकिस्तान के चंगुल में फसने से बचा लिया।

पंडित प्रेमनाथ डोगरा सचमुच प्रेम के नाथ अर्थात् अपने नामार्थ को सार्थकता प्रदान करने वाले, एक अलौकिक व्यक्तितत्व, जिसमें सामाजिक दृढता, निःस्वार्थंता एवं निष्ठा का संगम स्वतः परिलक्षित होता है।

पंडित प्रेमनाथ जी का अनूठा व्यक्तित्व असमानताओं की आंधी में एक उपलब्धी से कम नहीं था। जिस काल में स्वार्थ, लूट खसूट, भ्रष्टाचार, धोखाधड़ी आदि बुराइयों को ही समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त हो, उस काल में निःस्वार्थ, सहृदय परोपकारी तथा राष्ट्रभक्ति के भाव से भरा हुआ पवित्र व्यक्तित्व अपने में असामान्य बात नहीं।

आज से एक सौ दस वर्ष पूर्व 1941 विक्रमी तदनुसार 23 अक्तूबर 1884 को पंडित प्रेमनाथ डोगरा ने समैलपुर गांव में पंडित अनन्तराम जी के घर जन्म लिया। स्मैलपुर गांव जम्मू नगर से 13 मील दूर जम्मू-पठानकोट मार्ग से उत्तर में एक प्रसिद्ध गांव है। पंडित अनन्तराम जी के पिता दुर्योधन,



पं० प्रेम नाथ डोगरा

किशन कोट (जिला गुरदासपुर) के राजा, पंडित साहबदयाल के धर्म स्थानों के अधिष्ठाता थे। पंडित अनन्तराम जी ने राजा साहबदयाल के पोते के सहपाठी के रूप में उच्च शिक्षा प्राप्त की। स्वर्गीय महाराजा रणवीर सिंह जी के समय में आप उनके मुसाहिब के रूप में जम्मू रहे। जम्मू के प्रसिद्ध सरकारी रणवीर सिंह गवर्नमेंट प्रेस के अधीक्षक के रूप में बाद में रियासत जम्मू कश्मीर की, भारत में सम्पति के अधीक्षक रहे और शाही मालखाना के अधीक्षक का कर्त्तव्य भी निभाया। अपने अवकाश प्राप्त जीवन में इन्होंने नगर के 'स्वास्थ्य और स्वच्छता' प्रशासन में बढ चढ कर भाग लिया और जम्मू नगरपालिका के प्रधान रहे। जम्मू के सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन में इनका विशिष्ट स्थान था। पंडित प्रेमनाथ डोगरा जी भी जम्मू के किसी भी धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक कार्यक्रम में अनिवार्य रूप से सम्मिलित होते थे। यह प्रवृत्ति उनको विरासत में प्राप्त हुई थी।

बचपन में ही उनकी मां नहीं रही। नानी ने इनको पाला पोसा परन्तु 9 वर्ष की अल्पायु ही में उनका भी स्वर्गवास हो गया। पंडित जी का बचपन लाहौर में बीता तथा शिक्षा दीक्षा भी वहीं सम्पन्न हुई। उन्होंने उर्दू माध्यम से पीर मिट्ठा स्कूल लाहौर में शिक्षा पाई। खेलों में विशेष रुचि होने के कारण वे फुटबाल के एक मंजे हुए खिलाड़ी थे। 1904 में आपने मैट्रिक की परीक्षा पास की। स्कूली शिक्षा के दिनों में इन्होने अंग्रेजी, हिसाब, इतिहास और फारसी में भी इनाम प्राप्त किये तथा 100 गज 400 गज तथा आधा मील और मील की दौड़ प्रतियोगिताओं में प्रथम स्थान प्राप्त किया।

समाज सेवा को ही अपना सर्वोपरि धर्म मानने वाले पंडित जी ने अनुसूचित जाति के लोगों के उत्थान का सफल प्रयास किया। इस जाति के लोगों का मंदिर में प्रवेश निषिद्ध था इन्होंने इसके प्रति विरोध प्रकट किया। फलस्वरूप हरिजन लोग भी मंदिर आने जाने लगे। वे हरिजन सेवा संघ के प्रथम अध्यक्ष रहे।

जन जागरण के अग्रदूत पं० जी ने कल्याण हेतु ऐसे भरकस प्रयत्न किये जो फलीभूत भी हुए। इन्होंने जीवन निर्वाह के लिये मात्र दान इत्यादि पर आश्रित, तत्कालीन ब्राह्मण समाज को स्वावलम्वी होना सिखाया।

सनातन धर्म सभा के प्रधान के रूप में इन्होंने कृष्ण जन्माष्टमी, राम नवमी और विजय दशमी जैसे राष्ट्रीय पर्वों को केवल राज्य की ओर से ही नहीं अपितु सामाजिक रूप से मनाने का सर्वप्रथम प्रयास किया।

जन कल्याण की दिशा में अपनी गतिविधियों को बहु आयायी बनाया। डुग्गर रियासत के लोगों को उच्च शिक्षा प्राप्त करने तथा सरकारी सेवा के अवसर कम प्राप्त होते थे और रियासत में नियुक्त होने वाले अफसर प्रायः

बाहर से आते थे। इस सब के लिये इन्होंने स्टेट सब्जैक्ट की परिभाषा का निर्माण किया ताकि अपनी रियासत के स्थायी सदस्यों को ही रियासत में काम करने का अवसर प्रदान किया जाये।

दीन दुखियों के पिता, छोटे बड़े अमीर गरीब सबके सहयोग देने में पंडित जी हर समय तत्पर रहते थे। जब भी किसी पर कोई विपत्ति आती तो पंडित जी अपने सामर्थ्य से बाहर भी उसकी सहायता करते थे। दूसरों के सुख-दु:ख को अपना सुख-दु:ख मानने वाले अपने हंसमुख स्वभाव तथा सहृदयता के कारण जन साधारण में बड़े लोकप्रिय थे।

पंडित जी ने राजनीति के क्षेत्र में कई कीर्तिमान स्थापित किये। नि:स्वार्थ तथा निश्छल राष्ट्रप्रेमी होने के नाते उन्होंने रियासत जम्मू कश्मीर में विदेशी आक्रमणकारियों द्वारा उत्पन्न की गई अनेक विकट परिस्थितियों में भी जन साधारण को एक नई क्रान्ति का शंखनाद किया। पड़ोसी देश के स्वतन्त्रता की भावना को दबाने का विदेशियों का प्रयत्न नाकाम कर दिया। राजनीति के क्षेत्र में अपने कार्यों द्वारा तथा राजनीति के प्रति सुनिश्चित दिशा के कारण उन्होंने कितने ही अवरुद्ध मार्गों को खोल दिया, इस सिलसिले में इन्होंने कई आन्दोलन तथा सत्याग्रह किये और जनसंघ के प्रधान होने का इन्होंने बखूबी निभाया। इसी पद पर आसीन होते हुए इन्होने विदेशी षडयन्त्रों का भाण्डा फोडकर उन्हें नाकाम कर दिखाया। भारत के विभाजन के समय पंजाब रिलीफ कमेटी तथा स्टेट रिलीफ कमेटी के रूप में पंडित जी ने राष्ट्रवादी संगठनों के कार्यकताओं की सहायता से अपने घरों से बेघर हुए, विषमताओं से घिरे, भाई-बन्धुओं की उल्लेखनीय सहायता की। विभाजन के उपरान्त भी इन्होंने अपने सेनानियों का भी बिना जान की परवाह किये मोर्चों पर जाकर मनोबल बढ़ाया।

इनके संरक्षण में स्वयं सेवकों तथा कार्यकर्ताओं ने अनेक उल्लेखनीय ऐसे कार्य सम्पन्न किये। जम्मू में सैनिक जहाजों के उतरने के लिए हवाई जहाज अड्डा की आवश्यकता पड़ी तो पंडित जी ने प्रजा परिषद के अपने कार्यकर्ताओं के सहयोग से रातों रात इस योजना को सफलीभूत होने का जामा पहनाया। जन साधारण को राष्ट्रीय भावना से ओत प्रोत कर देने का महान् कार्य भी पंडित जी ही का था। उनके महान् चरित्र, त्यागमयी आदर्शों के कारण रियासत की देशभक्त जनता ने जेलों में यातनाएं सहकर, लाठियों की मार खाकर, गोलियों से अपने वीर सपूतों के बलिदान देकर अपनी सम्पत्ति जब्त करा कर भी पंडित जी का साथ दिया और अपनी रियासत को विदेशी षड्यंत्रों का शिकार होने से बचा लिया।

1931 ई० में जम्मू क्षेत्रों में कुछ साम्प्रदायिक उपद्रवों का कुप्रभाव मुजफ्फराबाद पर भी हुआ। मुजफ़राबाद में उस समय पंडित जी वजीर वजारत (डिप्टी कमिश्नर) थे। उन्होंने उन सब दंगों में राज्य की शान्ति भंग होने के डर के कारण, हिंसात्मक आचरण न अपनाते हुए प्रेम तथा नर्मी से विवाद को सुलझाने का प्रयास किया। क्योंकि अपने शान्ति प्रिय व्यक्तित्व के अनुरूप उन्होंने कभी भी बन्दूक या लाठी का सहारा नहीं लिया। उनकी अहिंसावादी नीति तत्कालीन सरकार को अच्छी नहीं लगी, जिस कारण उन्हें अपनी सरकारी नौकरी से भी हाथ धोना पड़ा। इस बात की परवाह किये बिना उन्होने नौकरी से त्यागपत्र देना मंजूर किया, परन्तु अपनी नीति में परिवर्तन नहीं लाया। महात्मा गाँधी ही की तरह वह भी अपने अहिंसावादी दृष्टिकोण में परिवर्तन करने के समर्थक न थे। वलिक उन्होंने अपनी इन्हीं नीतियों के फलस्वरूप कश्मीर में ऐसे कई प्रशंसनीय कार्य किये जिनके लिए शेख अब्दुल्ला ने भी कहा, कि "पंडित प्रेमनाथ जी की जितनी प्रशंसा की जाये उतनी कम है उन्होंने जो कार्य किये हैं उसे कश्मीर का एक भी बच्चा नहीं भूल सकेगा।"

सरकारी नौकरी से अलग होकर पंडित जी और भी खुले रूप में अब सेवा में व्यस्त हो गए। अपने कार्यों और चारित्रिक विशेषताओं के कारण वे लोगों के बड़े करीब आ गये थे। 157 में राज्य की विधान सभा में बहुमत से सदस्य निर्वाचित हो गये और फरवरी 1972 तक रहे। महाराजा हरिसिंह का शासन देखा। शेख अब्दुल्ला, बख्शी गुलाम मुहम्मद, श्री सादिक और सैयद मीर कासिम की सरकारें देखीं। यह सभी राजनेता उनके बड़े प्रशंसक थे। वे हर किसी के दिल में अपना स्थान बना लेते थे। अपने निच्छल सौम्य एवं सरल स्वभाव के कारण हर किसी का मार्ग प्रशस्त करते रहे। उनका यह गुण सर्वज्ञात है कि जो भी उनके पास आता वह तुरन्त उस की सहायतार्थ चल पड़ते। सच तो यह है पंडित जी जैसा नेता, देशभक्त तथा सच्चा मानव आज के समय में मिलना कठिन है। आज उनकी मृत्यु के 22 वर्ष बाद भी बहुत से सरकारी कामों में अड़चनों से दुखी हर जाति व धर्म के लोग हैं अपनी समस्याओं के निवारण के लिए उनके निवास स्थान कच्ची छावनी में आते हैं। पंडित जी तो नहीं परन्तु उनके अनुयायी पंडित जी की जनसेवा की परम्परा को आज भी पूरे मनोयोग से निभा रहे हैं।

आत्म प्रसिद्धि और प्रचार से सदा दूर रहने का प्रयास उन्होंने जीवन पर्यंत किया तथा अन्य लोगों, विशेषकर नये सामाजिक कार्यकर्ताओं से उनका यह आग्रह रहता था। एक घटना, जिसने प्रेरित मेरे जीवन को, मेरी

विचारधारा को एक नई दिशा प्रदान की—उस घटना से मैं आप पाठकों व साहित्य प्रेमियों को अवगत करना चाहता हूं। यह उन दिनों की बात है जब मैं 11 वीं कक्षा की परीक्षा देकर एक मास के लिये एक राष्ट्रवादी संगठन के कार्य के लिये सीमावर्ती गाँव अरनिया गया था। पंडित प्रेमनाथ डोगरा इस संस्था के प्रमुख भी थे। एक दिन प्रात: अपने बाल सहयोगियों के साथ मैं प्रात: खेलों के लिये निश्चित स्थान पर जा रहा था। खेल का मैदान सीमा से मात्र आधा किलोमीटर था, अभी पौ फटी नहीं थी तभी मैंने मलेशिया वस्त्रों में तथा फौजी बूट पहने तीन आदमी सीमा की ओर से आते देखे। मुझे सन्देह हुआ कि वे पाकिस्तानी घुसपैठिये हैं, अपने बाल साथियों के सहयोग से मैंने उन को रोका। बाद में कुछ ग्रामवासी भी आए। उन तीनों को पकड़ कर पुलिस थाने में ले जाया गया। पूछताछ पर पुलिस ने पाया कि ये तीनों पाकिस्तानी घुसपैठिये थे, जो फसल जलाने के लिये आये थे और मार्ग भूलकर गांव के समीप आ गये थे। इन पाकिस्तानी घुसपैठियों को पकड़वाने पर पारितोषिक के रूप में गांव वालों ने मुझे 100 रु० इनाम दिया तथा पुलिस ने भी प्रमाण-पत्र दिया। इस घटना का वर्णन उन दिनों समाचारपत्र पंजाब केसरी में भी छपा था, जिसमें मेरी भी बड़ी प्रशंसा की गई थी। मैंने यह समाचारपत्र सम्भाल कर रख लिया। कुछ दिनों पश्चात् पंडित प्रेमनाथ डोगरा जी ने मेरे पिता जी को कह कर मुझे अपने निवास स्थान पर बुलाया तथा शाबाश दी और आशीर्वाद दिया। बाल्यावस्था के कारण मैं फूला नहीं समा रहा था और मैंने तुरन्त ही उस दिन के समाचार वाला पंजाब केसरी दैनिक उन्हें दिखाया तो उन्होंने समाचार पत्र मुझ से लेकर एक ओर रखते हुए कहा कि मैं यह पढ़ चुका हूं परन्तु प्रशंसा और प्रचार पर इतराना नहीं चाहिये और कर्त्तव्य का निर्वाह प्रशंसा की लोलुपता के बिना ही करना चाहिए। उनके इन वाक्यों में मुझे आने वाली पीढ़ी के लिये एक बहुमूल्य प्रेरणा प्रतीत हुई। कितने महान् विचार थे उस कर्मयोगी के।

पंडित जी जात-पात के सख्त विरोधी थे। उनके मित्रों में हर जात के लोग शामिल थे। जिनसे उनके बड़े अच्छे सम्बन्ध थे। उनके हृदय में सभी के लिये प्रेम, दर्द ममता का अथाह सागर था। जो अपनी लहरों की शीतलता से लोगों के अन्त:करण को ठंडक पहुंचाता था। मानवता के पुजारी, स्नेह मधुरता से भरी आंखें, इस पर उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व को चुस्त डोगरी पाजामा, बन्द गले का कोट तथा विशेष ढंग से सजी पगड़ी और भी निखार देती थी। वह एक सच्चे कर्मयोगी और अजात शत्रु थे। बिना किसी छल कपट के अपनी बात को सीधे-साधे प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करना उनके व्यक्तित्व की एक मुख्य विशेषता थी।

जम्मू काश्मीर प्रदेश को देश से अलग करने की साजिशें ज़ोर पकड़ती जा रही थीं। पंडित जी को लगा कि इस प्रवृत्ति को अवरुद्ध करने के लिये एक जोरदार आंदोलन करना पड़ेगा। इसलिये 1952 में उन्होंने 'एक देश में एक प्रधान, एक विधान, एक निशान ही चले" इन मांगों को लेकर आंदोलन का बिगुल बजा दिया। स्वतन्त्र भारत में यह पहला और अनोखा आंदोलन था। इसमें हज़ारों सत्याग्रहियों ने भाग लिया। पंडित प्रेमनाथ डोगरा जी की प्रेरणा से आंदोलन में भाग लेने वाले पूरी तरह शांत रहे। और पंडित जी के आह्वान से देश भर से हज़ारों नर-नारियों जिनमें लेखक, किसान, राजनेता, सामाजिक कार्यकर्ता शामिल होने इस आंदोलन में भाग लेने के लिये आये। इसी आंदोलन को इतिहास में अमर कर दिया भारत केसरी डॉ॰ श्यामा प्रसाद मुखर्जी के बलिदान ने। परमिट सिस्टम टूटने, उच्चतम न्यायालय, उच्च चुनाव आयोग आदि संस्थानों का अधिक श्रेय जम्मू-काश्मीर प्रदेश तक आने तथा बहुत से नये प्रगतिवादी कानूनों को इस प्रदेश में लागू किये जाने का श्रेय पंडित प्रेमनाथ डोगरा की तपस्या को जाता है।

उपरोक्त वर्णित आंदोलन के नायक के रूप में पंडित प्रेमनाथ डोगरा की कीर्ति पूरे देश में फैल गई। देश की एक प्रमुख राजनैतिक संस्था जनसंघ ने उन्हें अपना अखिल भारतीय प्रधान चुना। यह श्रेय इस प्रदेश के किसी अन्य राजनेता को अभी तक नहीं मिला है। आज भी देश के प्रमुख नगरों में हम को बहुत-सी संस्थाओं के कार्यालयों में तथा भवनों में उनके चित्र श्रद्धा सम्मानपूर्वक से लगे देख जाते हैं। अपने प्रदेश की इस विभूति के चित्रों का दर्शन हम सब को हर्षित करता है और डुग्गर की मिट्टी की सुगन्ध पूरे देश में महकती अनुभव होती है।

पंडित प्रेमनाथ डोगरा को लोककला और संस्कृति से गहरा लगाव था। इस प्रकार के कार्यक्रमों, उत्सवों और मेलों में उनकी रुचि, इस बात की साक्षी है कि जम्मू में बैसाखी, विजयदशमी, रामनवमी, आदि त्योहारों में वह बढ़-चढ़ कर भाग लेते तथा कवि सम्मेलनों, साहित्यिक गोष्ठियों में और रामलीला के उत्सवों में आया जाया करते थे।

उनके जीवन का बहुत सा समय जिला डोडा के अति रमणीय स्थान भद्रवाह में बीता था। महकमा माल के उच्चाधिकारी होने के नाते उन्होंने कई वर्ष वहां बिताये। उन्हीं दिनों उनकी एकमात्र सन्तान 9 वर्षीय बालक भी भगवान को प्यारा हो गया। इस दुःखद घटना के बाद पंडित जी बहुत समय वहां रहे और राजनेता के रूप में भी वह इस क्षेत्र के प्रवास पर प्रायः आते जाते रहे। इस स्थान पर बिछुड़े अपने प्रिय पुत्र के शैशव की खिलखिलाहट की अनुभूति शायद

वह वहाँ के उनमुक्त बहते झरनों की कल-कल ध्वनि में करके अपने व्यथित हृदय को सांत्वना देते थे। उनके वात्सल्य और स्नेह को इस क्षेत्र के गरीब तथा पिछड़े लोगों के उत्थान के कार्यक्रमों में प्रकट होते देखा गया। शिक्षा और स्वास्थ्य सम्वन्धी सुधारवादी दृष्टिकोण रखने वाले पंडित जी के कार्यकाल में भद्रवाह क्षेत्र का बड़ा उत्थान हुआ। भद्रवाह के वरिष्ठ नागरिकों, श्री दया कृष्ण कोतवाल तथा स्वामी राज काट ने बताया कि पंडित प्रेमनाथ जी पहाड़ी नृत्य कुड तथा फुम्मनी में रुचि रखते थे तथा कभी-कभी विशेष अवसरों पर उन्होंने इस लोक नृत्य में भाग भी लिया था। इस प्रकार डोगरा पहाड़ी संगीत विशेषकर वीर गाथाओं कारकों और भाखों के गायन को बड़े मुग्ध होकर सुनते थे। पंडित जी के ही कुटुम्ब से सम्बन्धित जम्मू के प्रसिद्ध कवि स्वर्गीय कृष्ण स्मैलपुरी तथा श्री तारा स्मैलपुरी भी पंडित जी के काव्य प्रेम से प्रोत्साहित होते रहे हैं।

पंडित प्रेमनाथ डोगरा एक सच्चे समाजवादी थे। याद रहे कि उनका सरकारी नौकरी से त्याग भी उनके सर्वधर्मसमभाव के विचार में गहरी आस्था के कारण हुआ था। मुजफ्फरा वाद में लाठी गोली से काम न लेकर प्यार से, जन विरोध को शांत करने के कारण उन्होंने न केवल कश्मीरी मुसलमानों का स्नेह अर्जित किया अपितु शांति चाहने वाले सभी मतवलम्बियों के प्रिय नेता बन गए। उन की इन्हीं मान्यताओं के कारण ही शेख अब्दुल्ला ने उन्हें 'खुदा का भेजा हुआ महान व्यक्ति' कहा था।

उन्होंने राजनीति में जिन लोगों को प्रोत्साहित किया उन में हिन्दु-मुस्लिम सिख सभी लोग थे। अपने परम्परागत विधान सभाई क्षेत्र में, जो हिन्दु बाहुल्य क्षेत्र था अपने स्थान पर एक मुस्लिम को भारी बहुमत से जिता कर उन्होंने इस प्रदेश की राजनीति में एक अनुपम काम कर दिखाया। उनके घनिष्ठ मित्रों में शेख मुहम्मद अब्दुल्ला की सरकार में रहे मन्त्री तथा पूर्व संसद सदस्य कर्नल पीर मुहम्मद खान थे जो राजनीति और पंडित प्रेमनाथ डोगरा जी के उच्च आदर्शों से प्रभावित होकर पंडित जी की पार्टी जनसंघ में सम्मिलित हुए और पंडित जी के स्वर्गवास के बाद वह प्रदेश जनसंघ के अध्यक्ष पद पर आसीन होकर कई वर्षों तक उनके उत्तराधिकारी के रूप में कार्यरत रहे। सरदार बचनसिंह पंछी को भी राजनैतिक जीवन में लाने वाले पंडित प्रेमनाथ जी ही थे।

उनकी "सैकुलर" प्रवृत्ति के कारण हर मत और हर सम्प्रदाय के मानने वाले लोग उनके पास आते रहते थे। पंडित जी विधान सभा सत्र में भाग लेने

श्रीनगर जाते तो खालसा होटल में ठहरते। वहां भी लोगों ने देखा कि कश्मीर वादी के हिन्दु और मुस्लिम फरियादियों का उनके कमरे के बाहिर मेला लगा रहता था। 1970 में एक बार उन्होंने राशन की चीजों की कीमतों के मूल्यों में वृद्धि के विरोध में सत्याग्रह शुरू किया तो हजारों की संख्या में गुज्जर और बकरवाल उनके सत्याग्रह में शामिल होकर जेल गए। पंडित जी इस प्रदेश की जनता के हृदय सम्राट थे।

जम्मू नगर में तवी नदी के पुल के इस पार नगर में प्रवेश करते ही उस महामना की उच्च प्रतिमा के दर्शन होते हैं तो गर्व से सिर ऊंचा हो जाता है तथा मन स्वत: कह उठता है 'ऐसे होते हैं नेता, ऐसा होता है पथ प्रदर्शक' जो इतिहास के पन्नों पर नहीं बल्कि लोगों के दिलों पर अंकित हो जाता है। सचमुच उनकी कीर्ति अक्षुण्ण है और स्मृति कालजयी। □

लाला मुल्खराज सराफ

□ डॉ० सत्यपाल श्रीवत्स

स्व० लाला मुलखराज सराफ जहां जम्मू-कश्मीर की गण्य-मान्य हस्तियों में से एक हैं। वहां उन्हें इस राज्य के पत्रकारिता के इतिहास में प्रणेता के रूप में जाना जाता है।

मुझे स्मरण है कि 1946 ई० में जब मैं छोटा था और अपने गांव के प्राइमरी स्कूल में पढ़ता था तो लाला जी द्वारा सम्पादित दैनिक उर्दू पत्र 'रणवीर' हमारे घर डाक द्वारा आया करता था। हमारे ताया स्व० पं० शम्भुदत्त इस पत्र के नियमित ग्राहक एवं पाठक थे। जम्मू प्रांत के जिला कठुआ की बसोहली तहसील (अब बिलाबर) का हमारा सुराड़ी-सियालना नामक वह गांव सड़क से बहुत दूर था। डाकिया बिलावर से पैदल चल कर हमारे यहां समाचारपत्र देने सप्ताह में एक बार आया करता था।

हमारे ताया जी जो उस प्रदेश के नेता माने जाते थे—'पं० शम्भुदत्त शेरें आला' उपनाम से प्रसिद्ध थे। पत्र पर उनका पता भी पं० शम्भुदत्त शेरें आला लिखा होता था।

हम बच्चे 'रणवीर' को ताया जी के हाथ में बड़ी उत्सुकता से देखा करते थे, इसलिए नहीं कि हम उसे पढ़ना चाहते थे क्योंकि हमें उर्दू तो आती नहीं थी बल्कि इसलिए कि समाचारपत्र का लम्बा चौड़ा आकार और उसमें छपे कुछ चित्र हमारी उत्सुकता का कारण थे। न जाने इन्हीं कारणों से या किसी अज्ञात कारण से हमारे हृदयों में पत्र को देखते ही एक रोमांचक जिज्ञासा सी भर उठती थी।

भले ही उन दिनों स्व० नरसिंह दास नरगिस द्वारा सम्पादित साप्ताहिक चांद (उर्दू) भी हमारे घर में आया करता था। पर 'रणवीर' के प्रति हमारा



लाला मुल्खराज



विशेष ही आकर्षण हुआ करता था। हमारे ताया जी भी अक्सर 'रणवीर' की ही प्रशंसा करते थे। ताया जी उस प्रदेश की सामाजिक तथा राजनैतिक गतिविधियों के बारे में उसमें लेख भी भेजा करते थे। जब ताया जी ने तत्कालीन महाराजा हरिसिंह की सरकार द्वारा किसानों द्वारा उत्पादित तम्बाकू पर कर थोपने देने का आंदोलन छेड़ दिया तब स्व० लाला जी ने अपने पत्र के माध्यम से उस आंदोलन को अत्यन्त प्रशंसनीय ढंग से प्रोत्साहित किया। उन दिनों ताया जी उक्त आंदोलन से सम्बन्धित जो भी समाचार या लेख आदि भेजते वह उस पत्र में अधिकतर मुख पृष्ठ पर छपता था।

अन्ततः जब उस आंदोलन के आगे महाराजा की सरकार ने झुक कर किसान के कुल तम्बाकू उत्पादन में से पांच मरले भूमि पर उत्पादित तम्बाकू पर कर माफ कर दिया तो ताया जी ने प्रसन्न होकर उस का सारा श्रेय लाला जी को दिया था। जब मैं बड़ा होने और कुछ पढ़ लिख जाने पर उर्दू भाषा का भी कुछ ज्ञान प्राप्त कर गया तो मैं भी बड़े शौक से 'रणवीर' पढ़ने लगा। उन दिनों उस पत्र में लाला जी के जो निर्भीक सम्पादकीय छपा करते थे, उनकी अपनी गरिमा होती थी। उस समय जबकि हमारी रियास्त के लोग दोहरी गुलामी में जी रहे थे—इस प्रकार निष्पक्ष, निर्भीक, तीखे व्यंग्य भरे सम्पादकीय एवं समाचार छापना कोई आसान बात नहीं थी।

सन् 1952-53 में जब स्व० रामकृष्ण ज्योतिषी ने "पीस ब्रिगेड" की बागडोर सम्भाली तो उसके माध्यम से मेरा परिचय स्व. लाला जी के पुत्रों ओम् सराफ, सूरज सराफ, फिल्मी जगत की प्रसिद्ध हस्ती वेद राही तथा सत सराफ के साथ हुआ और उन्हीं के द्वारा स्व० लाला जी से भी परिचय हुआ। वह भव्य व्यक्तित्व और सौम्य स्वभाव पहले साक्षात्कार में ही मेरे हृदय पर अपनी छाप छोड़ गया था। पढ़ाई के लिए मैं कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में चला गया था। वहां से लौटा तो फिर इस परिवार के सम्पर्क में ही नहीं आया अपितु स्व० लाला जी की प्रेरणा से पत्रकारिता-व्यवसाय की ओर भी आकर्षित हुआ और उन्हीं के नाम से हिन्दुस्तान, नवभारत टाइम्स आदि हिन्दी समाचारपत्रों में समाचार भी भेजने लगा जिससे पारिश्रमिक मिलने के कारण मैं और अधिक उत्साहित होकर बड़े परिश्रम से कार्य करने लगा। तदुपरांत भाग्यवश सरकारी नौकरी स्वीकार करके पुन्छ कॉलेज में व्याख्याता हो गया। पर सराफ परिवार के साथ यथावत और जुड़ा रहा। जब कभी भी जम्मू आता समय निकाल कर अवश्य लाला जी के दर्शनार्थ जाता। वास्तव में लाला जी के व्यक्तित्व का ही यह गुण था कि जो कोई भी उनके सम्पर्क में आता उन से प्रभावित हुए बिना

नहीं रह सकता था। इतना ही नहीं कई पढ़े लिखे युवक तो उनकी प्रेरणा मात्र से ही पत्रकारिता के व्यवसाय में कूद पड़ते थे।

इस महान पत्रकार का जन्म जम्मू प्रांत के एक छोटे नगर साम्बा में आठ अप्रैल 1894 में हुआ था। उस समय साम्बा नगर का वह सराफ परिवार बड़ा ही साधारण था। बालक मुल्खराज अभी ग्यारह वर्ष की ही थे, वे अनाथ हो गए। अपने चाचा के आश्रय में रहते हुए कई प्रकार की आर्थिक तथा अन्य कठिनाइयां झेलते हुए भी प्रतिभाशाली बालक मुल्खराज ने अपनी पढ़ाई जारी रखी और उच्च श्रेणी में दसवीं की परीक्षा उत्तीर्ण की। हाई स्कूल परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद उस प्रतिभाशाली बालक के सामने यद्यपि अत्यन्त आर्थिक संकट था तो भी उसने 1914 में जम्मू आकर वहां के अपने समय के अत्यन्त प्रसिद्ध शिक्षण संस्थान "प्रिंस आफ वेल्ज़ कॉलेज में दाखला लिया और अत्यन्त लगन तथा परिश्रम से बी० ए० पास की।

जम्मू रहते हुए युवक मुल्खराज सराफ ने अपने प्रत्येक क्षण का सदुपयोग करते हुए अध्ययन से बचे हुए समय को बाह्य ज्ञान की पुस्तकों, समाचारपत्रों तथा स्तरीय पत्रिकाओं के अध्ययन में व्यतीत किया। इससे उनकी प्रतिभा अधिक प्रखर हुई। क्योंकि उन की किसी भी विषय को गम्भीरता से समझने-पचाने की शक्ति पहले ही अद्भुत थी।

जम्मू के उक्त कालेज से स्नातक की उपाधि प्राप्त करके वे लाहौर के विधि कॉलेज में भर्ती हो गये। उन्हीं दिनों अमृतसर के जलियां वाले बाग में हुए नरसंहार से उन्हें गहरा आघात लगा। अत: उसने उसी दिन से अंग्रेज सरकार के विरुद्ध चल रहे संघर्ष में शामिल होकर स्वतन्त्रता प्राप्त करने का निश्चय कर लिया। उन्हीं दिनों पंजाब के प्रसिद्ध नेता लाला लाजपत राय अमेरिका से लौट कर आए थे। और आते ही वह अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के प्रधान चुने गए थे। तब युवा मुल्खराज भी उनके सम्पर्क में आये और लाला जी की प्रेरणा से वह दैनिक 'वन्दे मातरम्' के उप-सम्पादक नियुक्त हुए। इस प्रकार नियमित रूप से युवा मुल्खराज सराफ पत्रकारिता के व्यवसाय के क्षेत्र में पूर्ण मनोयोग के साथ उतर पड़े।

इस व्यवसाय से जुड़ कर भी वे समय-समय पर लाला लाजपतराय से प्रेरणा अवश्य लेते रहे। उन्हीं दिनों लाला मुल्खराज के मन में जम्मू से एक दैनिक पत्र आरम्भ करने की योजना पनपने लगी जो धीरे-धीरे इतनी दृढ़ हो गई कि मुल्खराज जी को 'वन्दे मातरम्' पत्र के उप-सम्पादक के पद से त्यागपत्र देकर जम्मू आना पड़ा।

जम्मू पहुंचते ही उन्होंने उर्दू दैनिक 'रणवीर' के प्रकाशन की योजना तैयार कर ली यद्यपि साम्राज्यवाद के उस युग में यह काम अत्यन्त कठिन था। प्रारम्भ में मुल्खराज जी को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इतना नहीं महाराजा प्रतापसिंह की सरकार ने उस उर्दू दैनिक के प्रकाशन को रोकने के लिये अनेक रुकावटें डालीं परन्तु स्व० लाला जी ने हार नहीं मानी और उन्होंने अपना संघर्ष जारी रखा। अन्तत: 28 जून 1924 को उनकी चिर अभिलाषा पूरी हुई जिससे उर्दू रणवीर (साप्ताहिक) का नियमित प्रकाशन प्रारम्भ हो गया। कुछ समय के बाद यह पत्र दैनिक कर दिया गया। स्व० लाला जी के अथक परिश्रम एवं कर्मनिष्ठा से दैनिक रणवीर की नींव धीरे-धीरे सुदृढ़ हो गई।

क्योंकि वह समय स्वतन्त्रता संग्राम का था, अत: दैनिक रणवीर ने लोगों को दोहरी गुलामी से मुक्त होने के लिए तैयार करने के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई, जिस की इस प्रदेश में नितांत आवश्यकता थी।

1930 में जब महात्मा गांधी को ब्रिटिश सरकार ने गिरफ्तार कर लिया तो भारत के अन्य भागों के समान इस राज्य के लोगों ने भी प्रदर्शन और बंद रखा। उस समय भी दैनिक रणवीर की भूमिका उल्लेखनीय थी। परन्तु जम्मू-कश्मीर के तत्कालीन प्रशंसक महाराजा हरिसिंह 'रणवीर' के सम्पादक लाला मुल्खराज से चिढ़ गए और उन्होंने एक अध्यादेश द्वारा रणवीर के प्रकाशन पर प्रतिबन्ध लगा दिया। परिणामत: नवम्बर 1931 ई० में रणवीर का प्रकाशन बन्द हो गया, परन्तु कुछ समय के बाद इसका प्रकाशन फिर प्रारम्भ हो जाने पर स्व० लाला जी ने कड़ा परिश्रम करके पत्र का स्तर बढ़ाया। परिणाम यह हुआ कि 'रणवीर' की ख्याति दूर-दूर तक फैल गई।

सन् 1947 में जब हमारा देश विभाजित और स्वतन्त्र हुआ तो 'रणवीर' पर फिर प्रतिबन्ध लग गया। कारण था इसके द्वारा शेख मोहम्मद अब्दुल्ला को जेल-मुक्त करने के लिए खुला प्रचार करना। परन्तु क्योंकि इसके साथ-साथ स्व० लाला जी के कुशल सम्पादकत्व में ही इस पत्र में मोहम्मद अली जिन्ना की नीतियों को कई बार दुत्कारा गया था। सितम्बर 1947 ई० में जिन्ना की मुस्लिम लीग द्वारा प्रेरित पठानों द्वारा इस राज्य में (विशेष कर कश्मीर घाटी में तबाही में नरसंहार की भी कई बार निंदा की गई थी, अत: इस पत्र पर लगा प्रतिबन्ध बाद में सरकार द्वारा हटा लिया गया था।

बाद में दैनिक उर्दू रणवीर के नियमित प्रकाशन के साथ-साथ स्व० लाला जी ने बच्चों के लिए एक 'रत्न' नामक बाल पत्रिका (उर्दू) का भी प्रकाशन प्रारम्भ किया। इस बाल-पत्रिका का भी सभी ने स्वागत किया था।

परन्तु कदाचित आर्थिक कठिनाई के कारण स्व० लाला जी को कुछ समय के बाद इसे बन्द कर देना पड़ा।

वृद्धावस्था में पदार्पण करते ही अपने सम्पादन कार्य के साथ-साथ स्व० लाला जी पुस्तकें भी लिखने लगे थे। उनकी रचना मेरी पाकिस्तान यात्रा (उर्दू) को जम्मू कश्मीर की कल्चरल एकेडमी ने पुरस्कृत किया था। उनकी दूसरी रचना शेरे डुग्गर लाला हंसराज (उर्दू) को भी पाठकों ने बड़ा सराहा था।

सन् 1956 में स्व० लाला जी की ख्याति उस समय संसार भर में फैल गई थी जब उन्होंने हेलसिंकी (फिनलैंड) में 'विश्व पत्रकार' सम्मेलन में भाग लिया था। उस सम्मेलन में भाग लेने के लिए भारत से जो पत्रकारों का प्रतिनिधि मण्डल गया था स्व० लाला जी उसमें अन्यतम थे।

स्व० लाला जी सच्चे गांधीवादी थे। सादा जीवन ऊंचे विचार उनका जीवन लक्ष्य था। अपने पत्रकारिता के जीवन में लेखन कार्य में व्यस्त रहते हुए भी भारतीय रैडक्रास सोसायटी, समाज कल्याण केन्द्र, वृद्धाश्रम प्रबन्ध समिति, गौरक्षा समिति, वेद मन्दिर बाल निकेतन (अनाथालय) आदि अनेक जनकल्याण संस्थाओं से सक्रियतापूर्वक जुड़े हुए थे।

उन्हें भारत के राष्ट्रपति की ओर से पद्मश्री के सम्मान से भी अलंकृत किया गया था। वे उड़ीसा की एक संस्था आई० एफ० डब्ल्यू० से (कटक) की ओर से 'रोब ऑफ आनर' से अलंकृत हुए। 17 मार्च 1977 में स्व० शेख मोहम्मद अब्दुल्ला ने एक बार ठीक ही कहा था कि लाला मुलखराज ने पद्मश्री का सम्मान पत्रकारिता के क्षेत्र में कड़े परिश्रम और समर्पण भाव से काम करके ही प्राप्त किया है। इतना ही नहीं एक पत्रकार के नाते उन्होंने भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में अपना जो योगदान दिया है उसकी मिसाल देना कठिन है।

स्व० लाला जी ने भारत तथा पाकिस्तान की अनेक यात्राएं तो की ही थीं परन्तु इसके अतिरिक्त उन की रूस, इंग्लैंड, जर्मनी, चीन तथा अमेरिका आदि देशों की यात्राएं भी उल्लेखनीय हैं। इन यात्राओं से उन्हें जो अनुभव प्राप्त हुए लाला जी ने उन्हें लेखनीबद्ध करके समाज पर बड़ा उपकार किया है। उनके इन्हीं अनुभवों के आधार पर उन्हें ज्ञान की विभिन्न शाखाओं का विश्वकोश कहा जाता था।

अपनी 88 वर्ष की अवस्था में जब उन्होंने पाकिस्तान की यात्रा की तो सभी आश्चर्य में थे, पर 92 वर्ष की अवस्था में जब वह अमेरिका गए तो उनके सभी मित्रों तथा सम्बन्धियों ने दांतों तले उंगलियां दबा लीं।

वास्तव में स्व० लाला जी को अपने स्वास्थ्य के बारे में कोई चिन्ता नहीं थी। इसके विपरीत उन्हें अपने ऊपर पूर्ण विश्वास था। यही कारण था कि वह 92 वर्षों की अवस्था में अमेरिका केवल गये ही नहीं थे अपितु वहां दो महीने भर रहे भी थे। स्पष्ट है कि उनके भीतर विचित्र आत्म-विश्वास था। इसीलिए तो वे कहा करते थे--"मैं अभी भी युवक हूं और आशा करता हूं कि सौ वर्षों की अवस्था में भी इसी प्रकार युवक ही बना रहूंगा।

96 वर्ष की आयु में बम्बई में अपने पुत्र श्री वेद राही के पास रहते हुए 21 फरवरी 1989 को एक संक्षिप्त बीमारी के उपरांत उन का जीवन सूर्य अस्त हो गया। आज यद्यपि यह महान् व्यक्तित्व हमारे बीच नहीं है तो भी इसके गुण तथा बतलाई हुई कार्यपद्धति आज भी हमारे लिए प्रेरणा स्रोत बनी हुई है। □

कुंदनलाल सहगल

□ रसूल पोंपुर

जम्मू की धरती का सौभाग्य है कि इस से उत्पन्न होने वाली विभूतियों में ऐसे लोग सम्मिलित हैं जिन्होंने चित्र कला, साहित्य तथा संगीत जैसी ललित कलाओं के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। मानव समाज की प्राचीन परम्परा में संगीत का विशिष्ट स्थान रहा है। कविता और स्वर के बिना तो जैसे इस रंगारंग और विशाल जीवन का अस्तित्व ही असम्भव है। मनुष्य के अस्तित्व में दैव कृपा से यदि मुख्यत: संगीत सम्मिलित हो तो उसके भाग्य का क्या कहना! क्योंकि कवि के अनुसार :

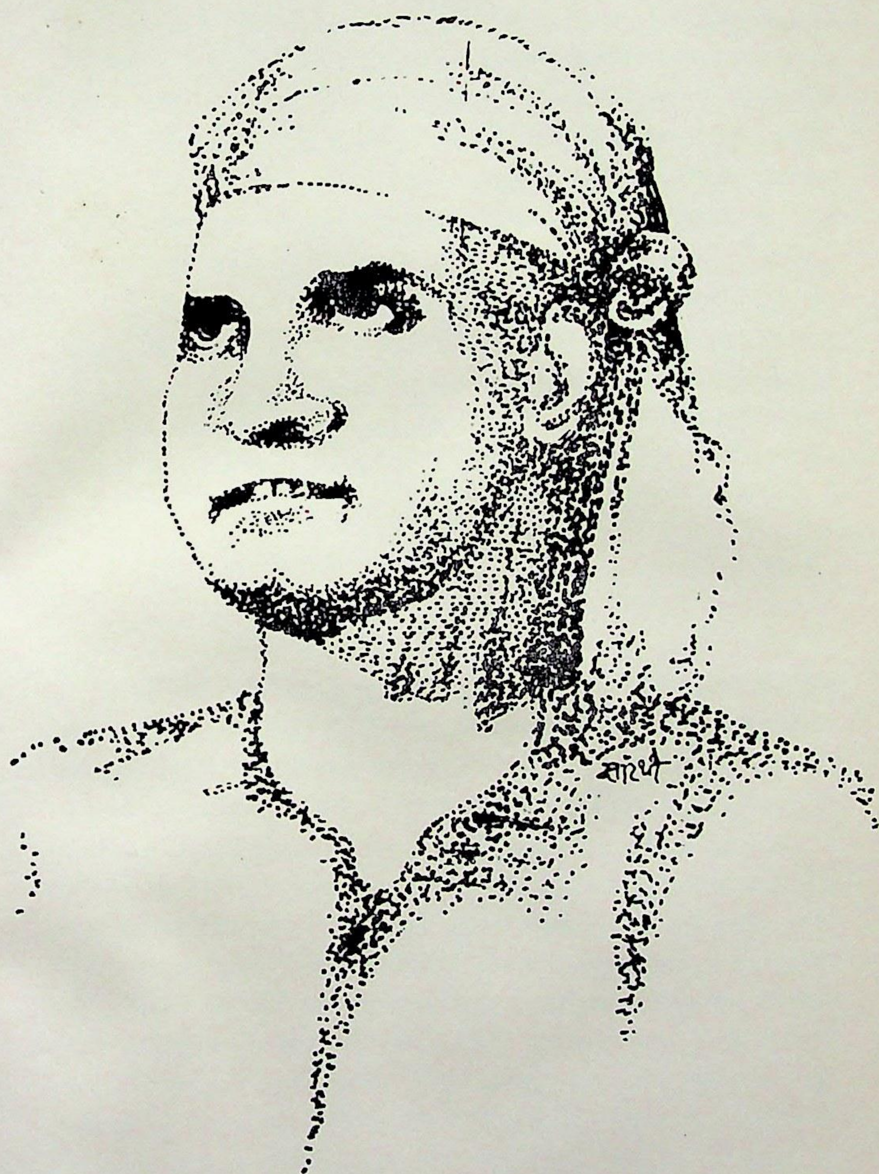
ईं सआदत ज़ोरे बाज़ू नेस्त।

यदि यह मान भी लिया जाए कि न्यायी सत्ताधीशों के संरक्षण में रहते हुए वे अपने समय के नये संगीतकार तथा मायक कला सूर्य की भांति चमके किन्तु यहां भी मूल महत्व उनके नश्वर अस्तित्व में कलाओं की असीम तथा अमर योग्यताओं को ही प्राप्त है।

हर कसे रा बहरि कारे साख़तन।

जम्मू के ही पं० उमादत्त शर्मा के सुपुत्र विख्यात संतूर वादक श्री शिव कुमार शर्मा ने कश्मीरी सूफ़ियाना संगीत की नींव को शास्त्रीय पुट देकर संसार के समक्ष प्रस्तुत किया है इस प्रकार उन्होंने न केवल जम्मू व कश्मीर प्रदेश का नाम रोशन किया अपितु अपने अद्वितीय गुणों की धाक सारी दुनिया में बिठा दी है। सूफ़ियाना संगीत को बहुआयामी बनाते हुए उन्होंने इसे पुरसोज़ प्रस्तुत करके विश्व भर की संगीत सभाओं में बहुत बड़ा योगदान दिया है।

मलिका पुखराज, जो अब पाकिस्तान में है, वे 1988 ई० में जम्मू कश्मीर की यात्रा पर भी आई थीं। सन् 1947 ई० से पहले अपनी स्वर माधुरी



के० एल० सहगल

और मार्मिक लय की सुगंध से संगीत के वातावरण को महकाती रहीं। यहां के शाही दरबार में मलिका पुखराज का व्यक्तित्व सुविख्यात है क्योंकि कला की सीमाओं को भौगोलिक स्थिति सीमावद्ध नहीं कर सकती। इसीलिए मलिका पुखराज हम से दूर होकर भी हमारे मन की धड़कनों में संगीत लहरियों के रूप में विद्यमान हैं। तबला वादक उस्ताद अल्ला रक्खा खां, जिनको तबला वादन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान 1985 के लिये जम्मू कश्मीर कल्चरल अकादमी ने० 1989 ई० में "फैलोशिप" प्रदान है। इस संदर्भ के बिना यह लेख कदाचित अधूरा ही रहेगा।

ये सारे महान कलाकार भले ही वे जम्मू से वाहर रह कर सम्वद्ध क्षेत्र में काम कर रहे हैं किन्तु उनके गुणों की खुशबू आज तक हम लोगों के बीच वसी हुई है और हमारा मस्तक उनका नाम लेते ही गर्व से ऊंचा हो जाता है। जम्मू की मानवीय भावनाओं से ओत प्रोत मिट्टी के बारे में डॉ० इकबाल के इस शे'र का प्रत्येक अक्षर पूर्णतया सही उतरता है :

नहीं है नाउमीद इक़बाल
अपनी किश्ते वीरां से ?
ज़रा नम हो तो यह मिट्टी
बहुत ज़रखेज़ है साक़ी ।।

इस बारे में चलिये ज़रा "बडयाल ब्राह्मणां", रणवीर सिंहपुरा (नवां शहर) जम्मू के अभिनेता, गायक और प्रसिद्ध फिल्मी कलाकार के दुखद और भावपूर्ण जीवनी पर एक दृष्टि डालें जो 18 जनवरी 1946 ई० में मात्र 42 वर्ष की आयु में सदा के लिए अपने अनंत प्रशंसकों से बिछुड़ गया। मेरा संकेत स्वर्गवासी श्री कुंदन लाल सहगल की ओर है जिन का जीवन संगीत कला से परिपूर्ण था। कला की इस लगन के कारण ही उन्होंने प्रत्येक छोटी बड़ी कठिनाई का अपने घर और बाहर डटकर सामना किया जब तक वे अपने स्वप्नों की दुनिया को साकार करने तथा फिल्मी दुनिया के मोहक सितारों की अभिनय की ऊंचाईयों को छूने में सफल न हुए। आरम्भ से ही वे उत्कण्ठा और जोशीली प्रवृत्ति लेकर आये थे। और यही खुशी मूल स्त्रोत जो किसी कलाकार की कला को सफलता प्रयत्न करती है। ऐसे कलाकार बहुत कम होते हैं जिनको अपने जीवन काल में ही प्रसिद्धि उपलब्ध हो। कुंदनलाल सहगल उन्हीं में से एक हैं जिन्होंने अपने जीते अपनी कला का सूर्य शिखर पर पहुंचता देखा जो आख्यान बन गया। यह साज़ और आवाज़ का स्वामी अप्रैल सन् 1904 ई० में पैदा हुआ। कुंदन लाल सहगल के पिता तहसीलदार थे जो रिटायर होने के बाद जालंधर चले गए और वहीं बस गए। वालक

सहगल बाल्यकाल से ही संगीत के रसिया थे। उनके जीवन का कठिन सफर यहां से ही आरम्भ हुआ। उस समय संगीत प्रेमियों तथा गाने-बजाने वालों को समाज अच्छी नजरों से नहीं देखता था। शायद सबसे बड़ा यही कारण था कि संगीत कला पुराने ज़माने में धर्म, साम्प्रदायिकता की छत्र-छाया में ही पली बढ़ी। बालक सहगल के समय में भी संगीत को लेकर यह धारणा थी और वे चोरी छुपे अपना यह शौक पूरा करते थे।

सहगल की मां 'केसर' ने अपने पुत्र के यह गुण पहचान लिये थे। और इस पहचान ने उस के शौक का उत्साह बढ़ाया। वह 'हीर' के बोल गुनगुनाती तो सहगल उसके स्वर के साथ स्वर मिलाकर गाते थे। इस प्रकार वे अपने भविष्य को संवारते रहे। उनको पढ़ने तथा परीक्षाएं पास करने में कोई दिलचस्पी न थी। सहगल की मां को पूरा विश्वास था कि उसका पुत्र अपनी कला द्वारा उनका नाम रोशन करेगा। संगीत के साथ उनकी स्वाभाविक लगन और उसकी मां के प्रेम भरे उत्साह का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है। एक बार इलाहाबाद के पास प्रयाग में एक संगीत सभा का आयोजन किया गया। अपने समय के प्रसिद्ध संगीतज्ञ पं० ओंकार नाथ ठाकुर, उस्ताद फैयाज़ खां डी०डी० पलुसकर, नारायण राव व्यास और विनायक राव पटवर्धन इस में विराजमान थे। ज्योंही कुंदनलाल सहगल ने हाल में प्रवेश किया वहां उपस्थित श्रोताओं ने समवेत स्वर में 'सहगल! सहगल!' शब्द की गूंज से उसका बड़ी गर्मजोशी और प्यार से स्वागत किया। उनकी मां 'केसर' और पत्नी 'आशारानी' भी वहां उनके साथ थीं। सहगल ने सादे ढंग से हारमोनियम पर देवदास, यहूदी की लड़की, चंडीदास और स्ट्रीट सिंगर के गीत गाये जिन को उन्होंने अपने जादुई और मार्मिक मीठे सुर से अमर कर दिया।

193४ ई० की बात है। संगीत सभा समाप्त हो रही थी। उधर अनुरोध आ रहे थे। कागज़ के परचों पर लिखा हुआ होता था कि "फलां गीत गाओ, फलां गीत गाओ। सहगल मंच से उतर कर हाल में आ गये। तालियों की गूंज में हर्ष से गद् गद् होकर उन्होंने अपने सिर को एक ओर मोड़ा और कहने लगे —सुनो, मां! सुनो। ये लोग तो मेरे लिए आसमान सिर पर उठाते है कि मैं उनके लिए गाऊं। उनको मेरा "न गाना" अच्छा नहीं लगता। उनका ख्याल है कि मैं गायक संगीतकार हूं।"

मां ने ऐसा करने से लाख मना किया परन्तु वे अपनी बात से टलने वाले कहां थे। उनकी माता भी समझ गई कि अब तो उसके लाडले पुत्र के बारे में देखे हुए स्वप्न साकार होने लगे हैं। उसके पुत्र की जादू भरी आवाज़ ने संसार को मोहित कर दिया। उसे किसी ज्योतिषी की बनाई गई जन्म

कुण्डली के अनुसार पता चला था कि उसका पुत्र जीवन के अंत में उत्तरोतर उन्नति तो करेगा पर उनकी जीवनज्योति भरी जवानी में ही बुझने वाली है। पर इससे पहले ही वह तो अपनी सदाबहार संगीत स्वरों को रिकार्ड करके अमर बनाना चाहता था।

सहगल जहां भी रहे, उन का प्रत्येक नगर में एक ज्योतिषी होता था। मुरादाबाद में योगेश्वर शास्त्री, कलकत्ता में बदरीप्रसाद शास्त्री—जिसकी पुत्री, 'पूरनी', को भी सहगल ने गीत और भजन सिखाए थे।

जिनके साथ सहगल के निजी सम्बंध थे, उनमें दिल्ली के ज्योतिषी बिश्वानाथ राजगढ़िया भी थे। जो इन दिनों 'नई सड़क' वाले क्षेत्र में रहते थे। यह ज्योतिषी सहगल के अंदरूनी भेद भी बड़ी नजदीकी से जानते थे। यह विचित्र संयोग था कि बम्बई में जहां सहगल ने जीवन के दिन गुजारे वहां उनका कोई भी परिचित ज्योतिषी नज़र नही आता। सम्भवत: इस लिए, कि उन को पता था कि जीवन तो नाशवान है, ज्योतिषियों से क्या लेना देना।

जियो, दो घड़ियां, अपनी मनमर्ज़ी से ज़िंदगी और बस।

कता-ए-एतिमाद में अकसर न झूम,

वह बलाए नागहानी और है।

यहां आने से मानों उनकी अगली जिन्दगी में जैसे रस घुल उठा। सहगल जालंधर में अपने पिता को छोड़कर प्रेम दीवाने बनकर मुरादाबाद चले आए, यहां का ही एक सारंगी वादक इम्तियाज़ अहमद, सहगल के साथ हुए अपने पहले साक्षात्कार का वर्णन हर्ष, प्रेम और गर्व के करता है कि एक बार उसे साथ सारंगी वादक के रूप पर संगत करनी थी। उसका भी यह पहला मौका था कि जब वह किसी भव्य और महत्वपूर्ण प्रोग्राम में एक बड़े कलाकार के साथ संगत करने वाला था। संयोग-वश अब्दुल करीम खाँ साहब का अपना सारंगी वादक किसी कारण से इस सभा में सम्मिलित नहीं हो सका। इस कार्यक्रम की एक यह भी विशेषता थी कि इस का मुख्य अतिथि मुरादाबाद का अंग्रेज स्टेशन मास्टर था। उससे पता चला कि पत्नी ने सहगल को पढ़ना, लिखना और बोलना सिखाया था। इम्तियाज़ का कहना था कि सहगल, जिस को रेलवे प्लेटफार्म पर अक्सर देखा गया, उस समय घर में बैठा हुआ था। एक बड़ा ही दुबला पतला नवयुवक जो अपने स्वप्नों और विचारों की दुनिया में खोकर गाना सुन रहा था। सहगल ने कुर्ता-पाजामा पहना हुआ था। उसके बाल अब भी लम्बे-लम्बे तथा घने थे। उसने इसको कोई कवि समझा परन्तु उस को क्या पता था कि हारमोनियम लेकर दरबार में गाने वाला गवैया पहले ही सिर के बाल मुंडवाकर बैठा हुआ है। और वह "विग" के सहारे कुदरत की इस बे एतिनाई पर प्रसन्न है।

इसी बीच एक दिन इम्तियाज़ अहमद दोपहर को रेलवे प्लेट फार्म पर पत्र डालने गया। जहां उसने उसे पटरी पर चिट्ठियों के थैलों के ढेर पर बैठा हुआ देखा। वहां बड़ी खामोशी छाई हुई थी और दूसरी ट्रेन घंटे भर में आने वाली थी। मार्च का महीना था। जब वह पटरी पार करके वहां गया तो वहां सहगल गा रहा था। उसने बड़े ध्यान से सुना और पता चला कि सहगल झंजोटी और ठुमरी गा रहा है। जिस राग को गाकर अब्दुल करीम खां ने बाद में पुरस्कार प्राप्त किया था। इम्तियाज़ अहमद का कहना था कि वह कोई गाना नहीं है जो सहगल अपनी धुन में प्रकट नहीं करता। फिर भी वह वही गाना गाया करता था जिस पर हाल ही में उसने कुछ दिन पहले अब्दुल करीम खां साहब के साथ सारंगी पर संगत की थी। सहगल दुनिया से बेखबर, मस्त होकर गाता था। जब तक सहगल गाना गाता रहा इम्तियाज वहीं प्रतीक्षा में उपस्थित रहा। वह सहगल को घर ले आया और सहज होकर उससे पूछा कि उसने यह कला किस से सीखी।

"किसी से भी नहीं" उस दुबले पतले लड़के ने जवाब दिया। "परन्तु तुम्हारा गाना सुनकर ऐसा लगता है कि तुम संगीत की कला में निपुण हो।" —इम्तियाज़ अहमद ने फिर कहा।

"इसी प्रकार नकल उतारा करता हूं" सहगल बोला। इम्तियाज़ को उनकी इस बात पर कोई विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने सारंगी हाथ में ली और सहगल से पूछा कि क्या तू और कोई गाना गा सकता है?

"केवल कुछ ग़ज़लें और भजन।" इम्तियाज़ ने सारंगी को अपने कलात्मक ढंग से छेड़ा और सहगल को कहा कि "कुछ तो गाओ।"

सहगल ने गालिब की यह गज़ल अपने दर्द भरे स्वर में छेड़ी—

दायम पड़ा हुआ तेरे दर पर नहीं हूं मैं,।
खाक ऐसी ज़िंदगी पे कि पत्थर नहीं हूं मैं॥

इस प्रकार सहगल बिना किसी तैयारी के सफलतापूर्वक गाने लगे। भले ही उन्होंने किसी गुरु या किसी घराने से शिक्षा प्राप्त नहीं भी की, वह तो अक्षरों और शब्दों में छिपी हुई संगीत कला का भेद जानने वाले थे। के० ऐल० सहगल की कला और उनके जीवन काल में ही ऊंची पदवियों पर आसीन दावेदारों में बी० एन सरकार, पंकज मलिक, आर०सी० बोजल. देवकी बोस और फनी मजूमदार आदि थे। संगीत बी०एन० सरकार 'न्यू थिएटर्ज़' का मालिक था। जो एक प्रकार की फिल्म कम्पनी थी। उसने सहगल को नौकर रख लिया। परन्तु समस्या यह थी कि सहगल सरस्वती की इस देन को ठीक ढंग से निभाएगा भी या नहीं। एक दिन आर० सी०

बोरल ने सहगल को "न्यू थियेटर्ज़" के "आडीशन रूम" में बुलाया। हारमोनियम पकड़कर वह फर्श पर बैठ गया। सहगल ने ज्यों ही अपने जादू भरे हाथों से हारमोनियम छेड़ा। इधर उधर से लोग आकर एकत्रित हो गए। पहले उसने भजन गाया और फिर ग़ज़ल गाई। इसके बीच राग 'यमन' और 'वागेश्वरी' में खयाल अलापा। सारे लोगों ने सांस रोक कर सुना। इस प्रकार उनके कला कौशलता देखकर उनका "न्यू थियेटर्ज़" के साथ लिखित मुआयदा आरम्भ हुआ और उसकी कला का सूर्य उदय हुआ। सर्वप्रथम इस कम्पनी की तैयार की गई फिल्म "मुहब्बत के आंसू" के लिए सहगल ने गाने गाए। इस के पश्चात् "सुबह के सितारे" "ज़िंदा लाश" "और फिर" "रामो और चंदी" वे सफल फिल्में थीं जिनको सहगल ने अपना स्वर और हृदयग्राही संगीत प्रदान किया। परन्तु देवदास एक ऐसी फिल्म थी जिस ने सहगल की प्रसिद्धि के सारे द्वार खोल दिए।

वह संगीत की दुनिया में नए शिखर पर पहुंच गया। जहां से फिर वह कभी नीचे नहीं उतरा। इस सम्बंध में आर॰ सी॰ बोरल के सुखद सहयोग का भी महत्वपूर्ण हाथ था। जिस ने सहगल के अंदर की कला की गुत्थी में छुपी हुई योग्यता को बाहर निकालने का यत्न किया। बंगाली फिल्म 'देवदास' में सहगल ने जो गाने गाए उनके बोल हैं :

1. कहारे जे जोडा देह है Kaharey Je Joda they hai
2. गुआला हुए उथकु फुटे Goalah huey uthuk phutey

असल में ये गीत पंकज मलिक को गाने थे परन्तु सहगल की गायन क्षमता को जांचने के लिये ये परीक्षण मात्र के लिये, उन्हें ये गीत गाने को मिले। उन्होंने इन गीतों को इस दृष्टिकोण से भी परखा ताकि वह इनके अन्दर निहित संगीत के आरोह-अवरोह समझ सके और उनकी लय के अंदर तक झांक सकें। यह गीत विशेष घटना की परिचायक हैं। शरतचंद्र के सुझाव अनुसार सहगल के ये गीत इस लिये भी गवाए गए क्योंकि चाय वाली दुकानों में केवल बंगाली के नहीं अपितु इनके साथ दूसरी भाषा बोलने वाले लोग भी आते थे। इस प्रकार सहगल बंगालियों में भी प्रसिद्ध हुए और फिल्म भी सफलता की ऊंचाइयों को छूने लगी। इसी नाम से हिन्दी फिल्म में भी सहगल ने अभिनेता और गायक के रूप में काम किया।

सहगल को अपनी कृपालु मां से संगीत का वातावरण भाग्य में मिला था। भाग्य में ही नहीं, जैसे विरसे में मिला। "कांटे के मुख, जन्म से ही तीखे होते

---

1. यह उल्लेखनीय है कि सहगल उर्दू के अतिरिक्त फ़ारसी, पंजाबी, बंगाली तथा हिन्दी भाषा में भी आत्म विश्वास के साथ गाते थे।

है।" इस व्याख्या के अनुसार वह अभी दस (10) वर्ष का ही था कि उसने जम्मू में "राम सीता" नाटक में सीता का रोल बड़ी सफलता के साथ निभाना आरम्भ किया। सहगल के पिता श्री अमरचन्द सहगल दर्शकों की अगली पंक्ति में बैठे थे और वे अपने बालक सहगल की सफलतापूर्वक अदाकारी पर खुश हुये। लम्बा क़द, सिर पर पगड़ी, वे अपने पुत्र की संगीत और अभिनय की रुचि को उत्प्रेरित करना उचित नहीं मानते थे। क्योंकि सहगल का मन पढ़ने लिखने में बिल्कुल नहीं लगता था। इस कारण सहगल को अपने कठोर स्वभाव वाले पिता से डांट-डपट और कई बार मार भी खानी पड़ी। यही कारण है कि सहगल ने दूसरे भाइयों की भांति अपने पिता से कभी कुछ नहीं चाहा। जम्मू के ही एक प्रभु प्रेमी और नेक सीरत बुज़ुर्ग उस्ताद शेख सुलेमान यूसुफ की सहगल पर भी दया दृष्टि थी। उन्हीं की देन थी कि सहगल की संगीत की विचित्र दुनिया सहगल की तल्लीनता। जब सहगल अभी बारह वर्ष के ही थे कि उनकी मां उनकी उंगली पकड़कर शेख सुलेमान यूसुफ़ की सेवा में उपस्थित हुई और उन्हें सारी बात सुनाई। सुलेमान साहब ने उसे परमात्मा की भक्ति में लीन रहने की सलाह दी और विश्वास दिलाया कि समय आने पर सब कुछ ठीक हो जाएगा। तेरह वर्ष की आयु में उनकी आवाज़ में नए गुंथे और गूंछने के जैसे विकार आया तथा बेसुरी हो गई। और वह दो साल कोई गाना नहीं गा सका। कुछ समय पश्चात् वह (आवाज़) फिर ठीक हो गई क्योंकि उस पर सुलेमान यूसुफ़ की कृपा थी।

सहगल ने स्वयं अपने एक मित्र अली बुखारी से कहा था कि वह बारहवें वर्ष की आयु में शेख सुलमान यूसुफ़ के हज़ूर में एक सर्द शाम को उनकी (सुलेमान यूसुफ़) का कृपा पात्र बना था।

इस घटना के तेईस वर्ष बाद सहगल के पिता श्री अमरचन्द सहगल तहसीलदारी के पद से सेवा निवृत्त हुये और उनका परिवार 'नवां शहर' (आर०एस० पुरा) जम्मू से जालंधर चला गया और स्थायी रूप से वहीं रहने लग गया। वहाँ अमरचंद सहगल ने ठेकेदारी की तथा खूब धन कमाया। सहगल सुलेमान यूसुफ़ की दया दृष्टि का सहारा ले नये घर को 'विदा' कहकर अपने स्वप्नों की दुनिया को साकार करने के लिए घर से निकल आये। हाफ़िज़ के शब्दों में उनको मालूम था कि केवल प्रेम शाश्वत है अन्यथा संसार में कुछ भी अनश्वर नहीं.

खलल पज़ीर बूद हर बिना कसे बीनी,
मगर बिनाए मुहव्बत कि
खाली अज़ खलल अस्त।

जालंधर में सहगल 'पंज पीर' गेट के पास रहने लगे जिसको आजकल सहगल महल" के नाम से जाना जाता है शहर-शहर घूमते वे हर बार घर छोड़ कर जहां भी गये थे उन्होंने घर में नये पते पर खत लिखा। ताकि घर वालों को उसका सही पता नहीं लगे कि वे कहां रहा करते हैं। उनके लिए केवल झूठी अफ़वाहें उड़ाई जाती थीं कि वे बरेली में हैं, कानपुर, लखनऊ और शिमला पहुंच गये हैं।

जो भी उन को ढूंढने निकला वह लौटकर यही कहता कि वह फिल्मी सितारों और अभिनेताओं के साथ बम्बई पहुँच गये हैं। किस को पता था कि इस शताब्दी के तीसरे दशक में भारत की फिल्मी दुनिया के तानसेन के भाग्य का तारा आर०सी० बोरल की दूरदृष्टि वश ख्याति के आकाश पर चमकने वाला है। इधर तो सहगल की हालत यह थी कि—

"चलता हूं थोड़ी दूर
हर इक तेज़ रौ के साथ,
पहचानता नहीं हूं अभी
राहबर को मैं।"

इसलिए उन्होंने "मुहब्बत के आंसू", "सुबह के सितारे", "जिन्दा लाश" जैसी फिल्मों में 'सहगल कश्मीरी' के नाम से ही काम किया। ताकि घर वालों, दोस्तों, मित्रों तथा रिश्तेदारों की नज़रों से बच सके। यहां यह कहना भी संगत होगा कि कलकत्ता की फिल्म कम्पनी 'न्यू थियेटर्ज़' में सहगल की नियुक्ति के समय उनकी आयु छब्बीस वर्ष थी तथा उन्होंने अपने अध्यात्मिक (पीर-मुर्शिद) शेख सुलेमान यूसुफ़ को शागिर्दी में बारह वर्ष से ज्यादा समय व्यतीत किया था।

फिल्म अभिनेता सहगल अपने व्यवसाय संगीत कला में उस नश्वर अस्तित्व के अमर प्रकाश थे। किन्तु लोग उन्हें मात्र एक अभिनेता मानते थे जो स्वयं गा भी लेता था। उस समय के हीरो हीरोइन का रोल करते अभिनेता या अभिनेत्री स्वयं गायक भी होते थे। सहगल का स्वभाव भी शायराना था इसलिये गाने से पहले वह शे'रों में प्रयोग किए गए शब्दों की तह तक पहुंचते थे ताकि अनजाने में अपने या कवि के साथ अन्याय हो जाने का भय न रहे।

संगीत प्रेमी और कुंदन लाल सहगल के प्रशंसक आज भी ग्रामोफोन कम्पनी, ऐंजल लेबल; निम्न कोड नं० के तहत रिकार्ड उपलब्ध कर सकते हैं :

कोड न० :—ई० ए० ऐच० ए० 1001, 1002, 1004, दि गोल्डन वाइस ऑफ के० ऐल० वाल्यूम 1, 2 और 3

इन रिकार्डों में वे गीत भरे हुए हैं जिनको सहगल ने फिल्मों में गाया था। इन में 'चंडीदास' 'यहूदी की लड़की' 'प्रेज़िडेंट' 'दि स्ट्रीट सिंगर', 'ज़िन्दगी और 'दुश्मन' फिल्में शामिल हैं।

☐ कोड न० एच० 7 में जो गीत रिकार्ड हैं वे हैं :

1. लाख सही पी की बत्तियां।
2. लग गई चोट
3. अपनी हस्ती का अगर हुस्न नुमायां
4. इश्क मुझ को न सही वहशत ही सही

☐ कोड न० ऐल० एच० 8

1. शमां का जलना है—
2. रहमत पे तेरी
3. घर यह तेरा सादा न मेरा है
4. आह को चाहिए इक उम्र असर होने तक

☐ कोड नं० ऐल०एच० 40

1. हर इक बात पे
2. वो आए ख्वाब में
3. दिल से तेरी निगाह जिगर तक उतर गई
4. बहुत इस गली में किये

☐ कोड नं० एल० एच० 26

1. फिर मुझे दीदा-ए-तर याद आया
2. कौन बुझाए शमां
3. नुक्ता चीं है गमे दिल
4. ये तस्सवुफ़ अल्लाह, अल्लाह।

एक बड़े रिकार्ड पर सहगल और पंकज मलिक के गाए बंगाली गीत रिकार्ड किये गए हैं। ये गाने रवींद्र संगीत पर आधारित तथा टैगोर के नाम समर्पित हैं। "हिन्दोस्तानी म्यूज़िकल प्रोडक्टस" का कोड नं० ए० एल० एच० एक्स० 8।

उन के कुछ गीतों के बोल :—

1. आमी तोमे जातो
2. इकुत को छोनीया लाने
3. तेमा बनाए गान छल्लो

4. आज खेला भंगार खेता
5. आ दिन आजी कौन धरे गो।

इस रिकार्ड में पंकज मलिक और सहगल के छः गीत हैं। बंगाली गीतों का दूसरा रिकार्ड बड़ा महत्वपूर्ण और चिरस्मरणीय है वह है "हिन्दोस्तान रिकार्ड" एवस्टैट प्ले ऐल०ए०-69,। गीतों के बोल हैं :—

1. आए पीए छे आनुन जला
2. ना पीए घुमाले पर पो
3. जा खुन रू बोना अमी
4. भादनों मिच्छें घर

के०एल० सहगल के कलात्मक व्यक्तित्व के उत्थान में भारतीय संगीत तथा कलासिकी रिवायत का बहुत बड़ा हाथ था। वह जहां भी गया उसने अपना शौक परिमार्जित करने के साथ साथ अपना यत्न जारी रखा। गालिब के शब्दों में :

बना के फ़क़ीरों का हम भेस गालिब
तमाशा-ए-अहले करम देखते हैं।

सहगल के जीवन और उसकी कला की समीक्षा करना इस छोटे से लेख में सम्भव नहीं। विशेषतया जबकि कोई स्रोत उपलब्ध न हो। परन्तु निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि सहगल के व्यक्तित्व और कला में नैसर्गिक सादगी थी जो उनकी प्रसिद्धि का बड़ा कारण बनी। क्योंकि यही वह चीज़ है जो बड़ी कठिनता से मिलती है। सहगल को इस का सदा दुःख रहा कि वे किसी बड़े 'घराने' या बड़े उस्ताद के शिक्षित शागिर्द नहीं थे। यह एक निर्मूल मनोवैज्ञानिक उलझन भी कही जा सकती है। क्योंकि एक बार उसका साक्षात्कार सगीत के सूर्य जनाब फ़ैयाज़ खां के साथ हुआ। उन्होंने दरबारी में 'ख़्याल' प्रस्तुत किया। जनाब फैयाज़ खां साहब ने फ़रमाया, "बरखुरदार, अब कोई नई चीज़ है नहीं जो मैं तुझे सिखाऊं।" तुम बड़े संगीतकार हो। तुम्हारी कला सम्पूर्णता के अन्तिम पड़ाव पर है। सहगल आरम्भ से ही मधुमेह (शूगर) के रोगी थे आरम्भ से ही उसका शरीर फोड़े-फ़ुनसियों से दुखता था और कठिन पीड़ा की चपेट में रहता था। लोगों का कहना है कि उन्हें शराबखोरी ने मारा। अंत में वे जिगर के रोग से ग्रस्त हो गये। और इस प्रकार हमारी दुनिया के प्रसिद्ध संगीतज्ञ, अमर युग गायक हम से असमय ही छिन गये।

उन्होंने कला के साथ प्रेम किया। जीवन के साथ प्रेम किया और मनुष्य के साथ बिना किसी जाति, धर्म, भेद के प्रेम किया। यहां तक कि वे मृत्यु के साथ भी प्यार करते रहे। जीवन के अन्तिम दिनो में बम्बई के सारे शमशान

घाटों पर जाकर अपना कुछ समय व्यतीत करते रहे। शायद वे अपने जीवन के अंत को अपनी आंखों के सामने देख-देख कर गालिब के इस शे'र को गुनगुनाते रहे हों :

हैरां हूं दिल को रोऊं, कि पीटूं जिगर को मैं।
मुक्कदर हो तो साथ रखूं नोह:गर को मैं ।।

सहगल के परिवार की पूरी जानकारी उनके परिजनों द्वारा प्राप्त करने के लिए लगन और खोज अपेक्षित है। आवश्यक है कि सहगल की जन्मभूमि जम्मू में उनका स्मारक बनाया जाये ताकि सहगल के जीवन तथा उसकी कला के प्रति अनंत प्यार के मिशन को जारी रखा जा सके। 'सहगल' हम सब में रोमांचक और अमर अपने मनमोहक गीतों के रूप में बसा हुआ है, दैहिक रूप से वे भले ही दूर चला गया है घर भरम ही तो है जो उसके कला प्रेमियों के साथ मौजूद है।

चित्रकार यामिनी राय, जो सहगल को "न्यू थियेटर्ज़ कलकत्ता" में आरम्भ से ही जानता था, उसके शब्दों—

"वह एक नया, अछूता, ऊंचा तथा सादा अभिनेता था, जिस को आम भाषा में बयान नहीं किया जा सकता। उसको एक ऐसी मूर्ति मानना पड़ेगा, जो किसी पवित्र चीज़ से प्रकट हुई हो। संसार तथा सांसारिक वस्तुएं और अपने आप से भी वे-खबर किसी ड्राइंग की लाइन के मानिंद"

अनु० सोमनाथ भट्ट 'वीर'

---

1. सहगल के दो दामाद अली और मैसर्ज़ चोपड़ा के ही नाम का पता लग सका। और कोई जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी।
2. इस लेख की प्रस्तुति में जनाब 'राघवा'—आर० मैनन की अंग्रेजी में लिखी पुस्तक—"के० एल० सहगल" मेरी बड़ी सहायक रही है।

—लेखक

नरसिंहदास 'नरगिस'

☐ शिव रैना

ग्यारह वर्षों की अथक मेहनत से ग्यारह सौ से ज्यादा पृष्ठों की 'तारीख डोगरा देश' (डोगरा देश का इतिहास) तथा लोकप्रिय उर्दू साप्ताहिक 'चांद' द्वारा अमर होने वाले डोगरा पत्रकार-शिरोमणि, स्व० एन डी० 'नरगिस' से जम्मू-कश्मीर सदा उपकृत है। प्रकृति ने सचमुच कल्पना और मौलिकता के धनी 'नरगिस' को, किशोरावस्था ही से, इस अद्वितीय कार्य के लिये तैयार कर दिया था। डुग्गर-देश क हिन्दी-उर्दू (सचित्र) इतिहास वास्तव में रहस्य, रोमांचक तथ्यों, वीरता, प्रेरणा, प्रतिशोध, भूलों और कूटनीतियों का एक ऐसा भव्य संग्रह है कि इसे एक बार पढ़ना शुरू करें, तो छोड़ने को जी नहीं चाहता। आधुनिक 'सत्य कथाओं' से रोचक, प्राचीन उपन्यासों के तिलिस्म से भी आकर्षक और सफल फिल्मों से ज्यादा चमत्कृत करने वाला है यह सरल-सलिल ग्रथ। डोगरा देश के इतिहास की लम्बी-चौड़ी भूमिका हिन्द समाचार' उर्दू के जाने-माने सम्पादक दिवंगत दयाकृष्ण 'गर्दिश' ने लिखी है। ग्रंथ की यह भूमिका, शायद विश्व की कुछेक 'सर्वश्रेष्ठ भूमिकाओं' में से एक है। 'नरगिस' डोगरी, उर्दू और पंजाबी के श्रेष्ठ कवि, लेखक तथा पत्रकार थे। उनकी बंदिश, चुस्ती, बुलंदख्याली और पाकीज़गी उनकी भाषा के एक-एक शब्द में मिलती है। 'जानकी', निर्मल', 'दुखियादेस', 'पार्वती', 'रुक्मिणी', 'मियां डीडो', 'गुलाब चरित्र', 'कश्मीर का सम्पूर्ण इतिहास', 'जरनैल जोरावर-सिंह' इत्यादि उनकी अमूल्य कृतियां हैं। उनकी उर्दू-पंजाबी-डोगरी कविताओं तथा लेखों की संख्या असीम है। डोगरी-भाषा वे लिपि 'टाकरी' लिपि में, लिखते थे। उन्होंने हिन्दी भी सीखी थी।

मध्यम कद, सुडौल शरीर, गेहुंआ रंग, उन्नत भाल, बाज-जैसी आंखें, उभरी ठोड़ी और विश्वास स्वाभिमान से दीप्त इस विलक्षण पत्रकार का जन्म

सियालकोट की हंसती-गाती पंजाबी धरती 'गोंडल गांव' में, 16 सितम्बर, 1902 को हुआ था। उनके पिता दीवान बेलीराम गवर्नमेंट प्रेस के कर्मचारी थे। 'नरगिस' ने मिडल श्रेणी जम्मू के श्री रणवीर हाई स्कूल से तथा मैट्रिक अकबर-इस्लामिया हाई स्कूल जम्मू से पास की। वे सातवीं श्रेणी ही से काव्य की ओर आकृष्ट हुए। विश्व के जाने-माने ग्रंथ उन्होंने किशोरावस्था ही से पढ़ने शुरू कर दिये थे फिर ऐतिहासिक कहानियां पढ़ने-लिखने में, उन्हें गहरी रुचि होने लगी। उनका एक काव्यांश है :

शे'र का जब ज़हन के हाथों में लेता हूं रबाब,
सामने मेरे चली आती है फितरिते-बेहिजाब।
दौड़ता हूं मैं हसीं नगमों के ज़ीनों पर कभी,
तैरता हूं मैं सितारों के सफीनों पर कभी।

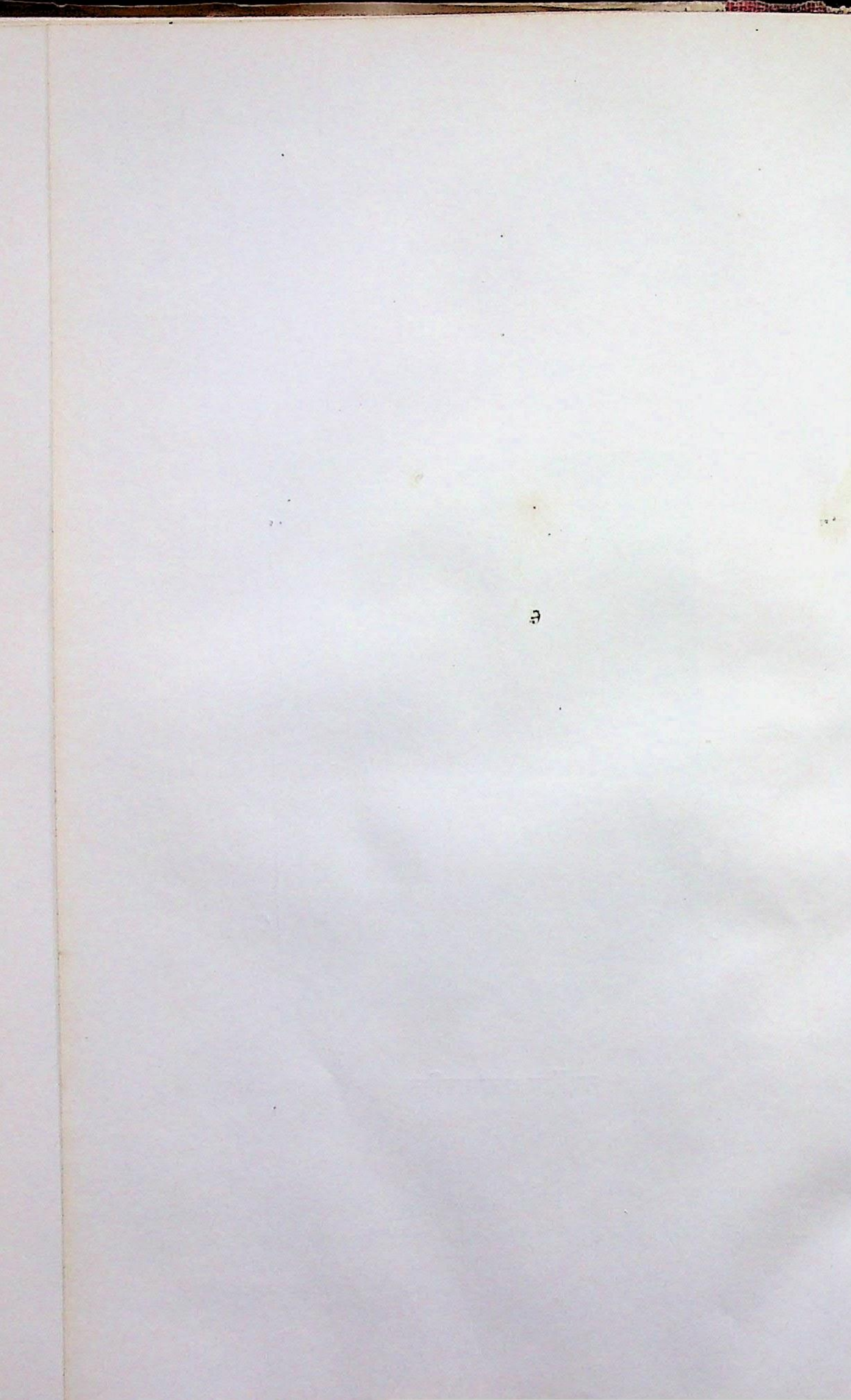


वे किरनों से बारीकतर उनके गेसू,
यह शोले-से चेहरे पे शाने-शबाबी।
है नाकामियों में हयाते-मुहब्बत,
मेरे इश्क को ज़हर है कामयाबी।

एन० डी० 'नरगिस' को मैट्रिक के बाद नौकरी ढूंढने में, पूरे चार वर्ष तक संघर्ष करना पड़ा। सेवा-निवृत्त होने के बाद, पिता की पेंशन मात्र 20 रुपये मासिक था। छोटे भाई ज्ञानचन्द दीवान और ('शेरे-डुग्गर' उर्दू साप्ताहिक के दिवंगत सम्पादक) दीवानचन्द दीवान की मामूली आय, उनके जेब-खर्च तक सीमित थी। इतने बड़े परिवार का बोझ युवा 'नरगिस' के कन्धों पर आ पड़ा। वे रोज़ तवी नदी के तट पर, चिन्ता में डूबे रहते। आखिर जम्मू के सदर-अस्पताल में नौकरी मिली। दो माह बाद, नौकरी भी छोड़ दी। 1923 में उन्होंने रामकोट जागीर में क्लर्की शुरू की। तीन वर्षों बाद तरक्की मिली और वे 'मुख्तारे-आम' बन गए। सोलह साल तक नौकरी की। एक दिन किसी मामूली बात से आहत होकर तुरन्त त्यागपत्र दे दिया। सेवा-काल के दौरान, उन्होंने हिन्दी भी सीख ली थी। फिर 12 जून, 1939 को उन्होंने पीर नौगजा (गुमुट) के सामने, भव्य 'दीवान प्रेस' खोली। शुरू में काफी निरुत्साहित भी हुए, परन्तु संघर्ष जारी रहा। तीन माह बाद ही, जम्मू-आकाशवाणी के पूर्व-निदेशक श्री बी० पी० शर्मा की प्रेरणा से, उन्होंने 'चांद' नामक सचित्र उर्दू-साप्ताहिक भी छापना शुरू किया। रियासत में सर्वाधिक बिक्री वाला यह बहुरंगा साप्ताहिक अप्रैल, 1983 तक, निरन्तर छपता रहा। 'चांद' के प्रेरक सम्पादकीय, पत्र, अग्र-लेख, सचित्र व विवरणात्मक मुख-पृष्ठ और रंगीन



नरसिंह दास नरगिस



साहित्य के लिए, इसे आज भी पत्रकारिता के इतिहास में, महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। 'चांद' रियासत के पिछड़े और दुर्गम क्षेत्रों तक भी पहुंचता था। इसके सम्वाददाता तथा प्रतिनिधि, गांव-गांव में विद्यमान थे। विशेषांक बेजोड़ होते थे। इसके लिये सर्वश्रेष्ठ कातिबों की सेवाएं ली जाती थीं।

हर बड़े आदमी की तरह, एन० डी० 'नरगिस' की बहुमुखी उपलब्धियों की मुख्य प्रेरणा उन की धर्मपत्नी श्रीमती धनदेवी थीं। वे चिट्ठी शेहां गांव (सियालकोट) की रहने वाली थीं। 30 दिसम्बर, 1926 को उन्हें यहां इकबाल 'नरगिस' नामक पुत्र पैदा हुआ।

'नरगिस' की आवाज़ में रौब, माधुर्य, अपनत्व और विद्वत्ता का एक विशेष पुट था। वे विश्वविद्यालय के प्रोफेसर लगते। लिबास भारतीय और वैविध्यपूर्ण रहता। नेपाल की टोपी, लखनवी अचकन, पंजाबी कुर्ता, कभी-कभी मद्रासी धोती, गुजराती जाकेट और विशुद्ध डोगरा अन्दाज़। सियासत में अदब (साहित्य) ले आते और साहित्य में सियासत (राजनीति)! वे व्यायाम घुड़-सवारी, दैनिक पूजा-पाठ और आत्म-चिन्तन के प्रेमी थे। बीवी-बच्चे के साथ काफी समय बिताते। और सामाजिक कार्यों में बढ़-चढ़कर भाग लेते। प्रातः चार बजे जागते और सायं पांच से रात साढ़े दस तक, लेखन-कार्य करते रहते। इकलौते बेटे को प्रेस और मुद्रण का पूरा-पूरा प्रशिक्षण दिया। उनका खान-पान और व्यवहार एकदम सादा था। किसी सुपात्र को निराश न करते। दान भी देते और ज्ञान-दान भी खुले दिल से करते। सुप्रसिद्ध पत्रकार बी० पी० शर्मा, गणेशदास शर्मा, उर्फानी, दयाकृष्ण 'गर्दिश', अल्लारक्खा सागर, दयाराम, मिराजदीन, प्रो० रामलाल मेहता इत्यादि उनके अनन्य मित्र तथा सहयोगियों में से थे। 'नरगिस' की सभी रचनाओं में वास्तविक डुग्गर-संस्कृति, डुग्गर-चरित्र तथा रीति-रिवाजों की झलक मिलती है।

एन० डी० 'नरगिस' किशोरावस्था ही से फिरदौसी की अमरकृति 'शाहनामा' से प्रभावित थे। वे भी, विलक्षण उपलब्धियों के उन डुग्गर शासकों का, शाहनामा लिखने के लिये कृतसंकल्प थे। परन्तु, यह कार्य शेरनी का दूध लाने-जैसा था। क्योंकि स्रोत नाममात्र थे और हज़ारों वर्षों का रहस्यमय इतिहास लिख पाने के लिए, एक अलौकिक प्रतिभा की ज़रूरत थी। अतीत और वर्तमान की खोई कड़ियों को मिलाना, अत्यधिक कठिन कार्य था। प्रामाणिक तथ्य और जानकारी जुटा पाना, कोई हंसी खेल न था। परन्तु धर्म ट्रस्ट, ट्रस्ट के पूर्व-प्रधान ब्रिगेडियर घनसारा सिंह, कर्नल मलूक सिंह तथा अन्य मित्रों की प्रेरणा से, आखिर पहली जनवरी, 1954 की एक ठिठुरती शाम में, एन० डी० 'नरगिस' ने जम्मू-कश्मीर का 'शाहनामा' (यानी अनूठा इतिहास)

लिखना शुरू किया। पूरे ग्यारह वर्षों तक, वे एक योगी की तरह लेखन तपस्या में लीन रहे। रामकोट में 'मुख्तारे-आम' पद पर कार्य करते हुए, 'नरगिस' अक्सर प्राचीन महलों के खंडहरों, तालाबों, बावड़ियों, उजड़े बागों, दुर्गों और समाधियों को देखकर, कल्पना-सागर में डूब जाते थे। वे कण-कण से, उसके प्राचीन व रहस्यमय अतीत की कहानी पूछते थे। लेकिन ये सब स्मारक मूक थे। भावुक इतिहासकार को वे क्या बता सकते थे? और जब 'नरगिस' ने इतिहास की कड़ियां जोड़ने के लिये विश्व के हर सम्बन्धित ग्रंथ सागर में डुबकी लगाई, तो प्रकृति पग-पग पर उनको सहयोग देने लगी और उन्होंने ऐसा दुर्लभ और महत्वपूर्ण इतिहास-पथ बना दिया, जिस पर चलने में भावी पीढ़ियां गर्व कर सकतीं हैं। 'डुग्गर इतिहास' उनकी साहसिक कृति है।

ग्यारह वर्षों की कठिनतम मेहनत का फल (डुग्गर-देश का इतिहास) जब एन० डी० 'नरगिस' ने पूर्व-सदरे रियासत तथा केन्द्रीय मन्त्री युवराज डॉ० कर्णसिंह के कर-कमलों में सौंपा, तो डॉ० कर्णसिंह के साथ-साथ पूर्व मुख्यमंत्री जी० एम० सादिक तथा जाने-माने विद्वानों ने भी ग्रंथ को 'अन्यतम तथा बहु-मूल्य' कह कर, भूरि-भूरि प्रशंसा की। 'नरगिस' ने 'कश्मीर का सम्पूर्ण इतिहास' पूर्व मुख्यमंत्री श्री सैयद मीर कासिम को 1972 में भी भेंट किया था।

नरसिंह दास 'नरगिस' एक कृतज्ञ इन्सान थे। उन्होंने बुढ़ापा ज्ञान-वृक्ष के तले बिताया। किताबों को वे सर्वश्रेष्ठ मित्र मानते थे। किताबों के साथ जुड़ाव का साधन उन्होंने बचपन ही से ढूंढ रखा था। अपने सरल जीवन तथा इस की कतिपय उपलब्धियों से वे पूर्णतया सन्तुष्ट थे। अनके अपने शब्दों में : ' मुझे इतिहास के साथ इश्क हो गया है। 'तारीख डोगरा देश' हिन्दी और उर्दू में तैयार हो जाने के बाद, मेरी सभी अन्तिम इच्छाएं पूरी हो गई हैं। इसके लिये, मैं परमात्मा का कृतज्ञ हूं।" अपनी साहसिकपूर्ण कृति युवराज कर्णसिंह को भेंट करते समय, उन्होंने 'नरगिस' से कहा था कि : "आप में भूचाल का बल है। रफ्तार में आंधियों का जलाल है। इरादों में कहकशां की बुलंदी है। रक्त के हर कण में, ज्वालामुखी की हरारत है।"

17 नवम्बर, 1973 को एक संक्षिप्त बीमारी के उपरांत उनका निधन हो गया। □

कृष्ण चन्दर

□ प्रेमी रूमानी

कृष्ण चन्द्र उर्दू के बड़े कहानीकार हैं । आरम्भ से ही वे साहित्य के प्रगतिवादी आन्दोलन के साथ जुड़े रहे । पहले-पहल वे एक रोमान्टिक कहानी-लेखक के रूप में उभरे पर धीरे-धीरे रूमान और यथार्थ का मनोहर समन्वय उनमें पैदा होने लगा । उन्होंने अनेक कहानियां, उपन्यास और नाटक लिखे । अपनी रचनाओं में कृष्ण चन्दर ने हर वर्ग के लोगों का प्रतिनिधित्व करते हुए और अपनी कला को जिंदगी के निकट ला खड़ा किया जिससे वे महान यथार्थवादी साहित्यकार बन गये ।

कृष्ण चन्दर का जन्म 23 नवम्बर सन् 1914 ई० में वज़ीराबाद ज़िला गुजरांवाला (अब पाकिस्तान) में हुआ । उनके पिता का नाम डॉक्टर गौरीशंकर था । कृष्ण चन्दर के जन्म के लगभग चार वर्ष पश्चात् सन् 1918 ई० में उनके पिता का स्थानान्तरण जम्मू से लगभग तीन सौ किलोमीटर दूर पुंछ ज़िले में हुआ, कृष्ण चन्दर की प्राथमिक शिक्षा पुंछ के स्थानीय विद्यालय में हुई । पांच वर्ष की आयु में उनको ज़िला पुंछ के मेंन्डर प्राइमरी स्कूल में प्रविष्ट कराया गया । उन्होंने विक्टोरिया जुबली स्कूल पुंछ से मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की । इसके पश्चात् वे लाहौर चले गये जहां से विज्ञान विषय लेकर एफ० एस० सी० और फिर कला विषय लेकर बी० ए० की उपाधि प्राप्त की । सन् 1934 में कृष्ण चन्दर ने अंग्रेजी साहित्य में एम० ए० किया और सन् 1937 में एल० एल० बी० की डिग्री प्राप्त की । वे इक़बाल की शायरी पर पी० एच० डी० करना चाहते थे परन्तु उनका यह स्वप्न पूरा न हो सका ।

कृष्ण चन्दर सरल स्वभाव, मिलनसार और सभ्य सज्जन थे । वे ऊंचे दरजे के प्रकृति-प्रेमी थे । उनका घरेलू जीवन भी बहुत सरल था । आतिथ्य में में वे अपनी मिसाल आप थे । मानवता उनका धर्म था । उन्होंने हर समय अपनी लेखनी द्वारा अत्याचार के विरुद्ध आवाज़ उठाई । वे मिलजुल कर रहने में

विश्वास रखते थे। कृष्ण चन्दर में शुरू से ही देश-प्रेम कूट-कूट कर भरा था। उनके दिल में देशद्रोहियों के विरुद्ध आग जल रही थी। वे उन लोगों का पर्दा-फाश करना चाहते थे जो देश की व्यवस्था तहस नहस और इसकी इज्ज़त तार-तार करना चाहते थे। इसलिए वे छात्र जीवन में ही कॉलिज से भाग कर शहीद भगतसिंह के ग्रुप में सम्मिलित हो गये और इन्क़लाब के नारे बुलन्द करते रहे। इस कारण उन्हें दो महीनों के लिए लाहौर के क़िले में क़ैद कर लिया गया परन्तु पुलिस उनके विरुद्ध कोई अपराध सिद्ध न कर सकी अत: उन्हें सादर रिहा कर दिया गया।

कृष्ण चन्दर के तीन भाई थे—महेन्द्र नाथ, उपेन्द्र नाथ और राजेन्द्रनाथ। कृष्ण चन्दर की इकलौती बहन सरला देवी भी कथाकार हैं। वे हिन्दी के जाने माने साहित्यकार रेवतीशरण शर्मा की पत्नी हैं। सन् 1938 ई० में कृष्ण चन्दर का विवाह लाहौर में विद्यावती से हुआ। उनके तीन बच्चे हैं—रंजन, कपिला और अलका। कृष्ण चन्दर का वैवाहिक जीवन सफल नहीं रहा। प्रसिद्ध महिला कथाकार सलमा सिद्दीक़ी उनकी कहानियों से बहुत प्रभावित थीं और यह संबन्ध शीघ्र ही प्रेम में परिवर्तित हो गया। कृष्ण चन्दर भी सलमा से कहीं गहरे, जुड़ चुके थे। उन्होने पहली पत्नी को तलाक़ देकर 7 जुलाई सन् 1961 ई० में नैनीताल में सलमा से दूसरी शादी की। यह शादी इस्लामी प्रथा के अनुसार हुई।

कृष्ण चन्दर शुरू से ही पढ़ने लिखने में रुचि रखते थे। छात्र जीवन में उन्होंने अपने अध्यापक के चरित्र से प्रभावित हो कर 'प्रोफेसर बलीकी' के शीर्षक से एक व्यंग्यात्मक कहानी लिखी जो दिल्ली से निकलने वाले सत्र सियासत में प्रकाशित हुई। यह कहानी तत्कालीन पाठकों ने बहुत पसंद की परन्तु इस पर उनके पिता जी बहुत नाराज़ हो गये और कृष्ण चन्दर को लज्जित होना पड़ा। कॉलिज शिक्षा के दौरान कृष्ण चन्दर के अन्दर का कलाकार एकाएक जाग उठा जिसने उन्हें फिर से लेखनी उठाने पर विवश किया। इस जमाने में उन्हें पीलिया का रोग हुआ। स्वस्थ होने के पश्चात् उन्होंने इसी शीर्षक से एक कहानी रची जो 'अदबी दुनिया' लाहौर, में प्रकाशित और लोकप्रिय हुई।

कृष्ण चन्दर ने कई अंग्रेज़ी और उर्दू पत्रिकाओं के सफल सम्पादक के रूप में भी काम किया उन्होंने 'नया अदब' के सम्पादक-मण्डल की ओर से प्रकाशित होने वाले संग्रह 'नये ज़ाविये' के दो अंकों का सम्पादन भी किया। शिक्षा संपन्न होने पर वे नवम्बर सन् 1939 ई० में आल इण्डिया रेडियो, लाहौर में सहायक कार्यक्रम निष्पादक के पद पर नियुक्त हो गये। इन्हीं दिनों उनकी भेंट शालि-मार पिक्चर्स के मालिक और सुप्रसिद्ध प्रोड्यूसर डबल्यू. जेड. अहमद से हुई। वे

उनकी प्रतिभा से परिचित थे। उन्हीं के कहने पर कृष्ण चन्दर शालिमार पिक्चर्स, पुणे, में मुलाज़िम हो गये जहाँ उन्हें कथा और पटकथा लेखन का काम सौंपा गया। उन्होंने अनेक फिल्मी कहानियां तथा पटकथाएं लिखीं। वे बम्बई टॉकीज़ और नेशनल थियेटर से भी संवद्ध रहे और मॉडर्न थियेटर्ज़ के नाम से एक निजी संस्था स्थापित की। कृष्ण चन्दर अन्तिम क्षण तक फिल्मी दुनिया से संवद्ध रहे। अपनी कहानियों और उपन्यासों की तरह उन्होंने अपनी फिल्मी कहानियों और दृश्य—चित्रणों में भी नये प्रयोग किये और इस प्रकार से उन्होंने फिल्मी मीडिया की भी निस्वार्थ सेवा की।

कृष्ण चन्दर ने अपने साहित्यिक जीवन की भी शुरुआत कला लेखन से की। यद्यपि शुरू में उन्होंने अंग्रेज़ी में भी कुछ लेख लिखे जो स्तरीय पत्रिकाओं और पत्रों में प्रकाशित हुए परन्तु वास्तव में उनकी रुचि कहानी-लेखन की ओर ही थी। अपनी शिक्षा समाप्त कर जब उन्होंने साहित्य-संसार में क़दम रखा तो उनकी पहली कहानी 'झेलम पर नाव में' प्रकाशित हुई। यह एक ऐसी कहानी थी जिस पर सबकी निगाहें जम गयीं। इसके पश्चात कृष्ण चन्दर निरन्तर लिखते रहे। उनकी प्रारम्भिक कहानियों पर रूमानियत की गहरी छाप है परन्तु इसके साथ-साथ इस दौर की कहानियों पर राजनीति की हल्की छाप भी दृष्टिगोचर होती है। ऐसी कहानियों में 'ज़िन्दगी के मोड़ पर', 'लन्दन की एक शाम', 'नग़मे की मौत' 'पुराने ख़ुदा' और 'अन्नदाता' इत्यादि उल्लेखनीय हैं। 'अन्नदाता' कृष्ण चन्दर के साहित्यिक जीवन का एक महत्वपूर्ण मोड़ है, यहां से कृष्ण चन्दर ने समाज के यथार्थ-चित्रण की सीमाओं में पदार्पण किया। यह कहानी बंगाल के अकाल का एक दस्तावेज़ और संभवत: समस्त उर्दू साहित्य में अद्वितीय है। सन् 1946 ई० से कृष्ण चन्दर की कथा-रचना का स्वर्णिम काल आरम्भ होता है। इस काल में उन्होंने भारतीय जल-सेना के विद्रोह से प्रभावित होकर 'तीन गुण्डे' और हिन्दू-मुस्लिम झगड़ों से प्रभावित होकर 'पेशावर एक्सप्रेस' और 'हम वहशी हैं' जैसी अमर कहानियां लिखीं। 'कालूभंगी' और 'महालक्ष्मी का पुल' भी कृष्ण चन्दर की उल्लेखनीय कहानियों में से हैं। इन कहानियों में पूंजीपति-व्यवस्था तथा श्रम-जीवियों के मध्य संघर्ष की व्यथा-कथा मिलती है। इसके अतिरिक्त कृष्ण चन्दर की बीसियों कहानियां हैं जिनमें जीवन के यथार्थ को बड़े निराले अन्दाज़ में प्रस्तुत किया गया है। ऐसी कहानियों में 'घूंघट में गोरी जले', लकड़ी के खोखे', 'जन्नत और जहन्नुम', 'पूरे चान्द की रात', 'सब से बड़ा गुनाह', 'अजन्ता से आगे', 'काला सूरज', 'टूटे हुए तार', तथा 'हुस्न और हैवान' आदि उल्लेखनीय हैं। कुछ कहानियों के अंश प्रस्तुत हैं जिनमें प्रीत-प्यार की मस्ती भी है और अत्याचार व हिंसा की घटनाएं भी, जीवन-दर्शन भी है और मानवतावाद व

शान्ति-स्थापना की इच्छा भी, वर्ग संघर्ष भी है और प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण भी। जैसे :—

'बाज सीधे-सादे लोग खयाल करते हैं कि कपड़े इनसान की खूबसूरती को बढ़ाते हैं। यहाँ मैं वह दुहराना नहीं चाहता जिसका मतलब यह है कि चांद गहनों के बग़ैर भला मालूम होता है। लेकिन मैं यह बात ज़रूरी कह देना चाहता हूं कि इन सीधे-सादे लोगों का ख़याल बिलकुल ग़लत है। कपड़े दर-असल इसीलिए पहने जाते हैं कि लोग अपनी बदसूरती को छिपा सकें। जिस तरह रूहानी बदसूरती को लोग ख़ैरात से ढांपने की कोशिश करते हैं, इसी तरह जिस्मानी बदसूरती को छिपाने के लिए खुशनुमा पोशाकें पहनी जाती हैं। ...गुलाब की कली चमेली का फूल, आसमान की नीलाहट, शफ़क़ का हुस्न अगर इन तमाम चीज़ों को कपड़ों की ज़रूरत नहीं तो क्या सिर्फ इनसानी हुस्न को कपड़ों की हालत है ?"

—(नंगे रहने पर)

'नदी के किनारे से आंगी किसी बेफिक्र हिरणी की तरह क़दम रखती आ रही थी कधे पर पतली-सी सोटी थी, लबों पर एक बेमानी-सा गीत, पांव नंगे थे लेकिन चाल पर ख़ामोश मोसीक़ियत का शुबह होता था। मुसाफिर ने अपनी किताब बन्द कर दी और आंगी की तरफ देखते हुए सोचने लगा---काश! वह मुसव्विर होता। कितनी खूबसूरत तसवीर है कितना दिलकश पसमंज़र ? आंगी के सुडौल मगर मजबूत बाज़ू, उसकी कमर का मुतनासुब खम, अच्छा तो वह संगतराश ही होता, दुनियां में किसकी आरिज़ूएं पूरी नहीं होती---वरना वह मुजस्मा तैयार करता कि यूनानी सनमगरी शशिदर रह जाती।'

—(आंगी)

'पार्टी बड़ी शानदार थी, राजासाहब लागरा और नवाब ऑफ घाघरा, बेग़म दाऊदी और रानी साहिबा गाऊदी, कर्नल घोड़ेवाला और मिस्टर छतरी-वाला, पीर साहब लोढ़ा और महन्त साहब टोढ़ा' —(लकड़ी के खोखे)

मैं आर्टिस्ट नुमा लौंडे की तरफ देख कर मुस्कुराया। उसने मुझे हाथ जोड़ कर नमस्कार किया। उसके बाद मैंने फिर से हाथ जोड़ कर नमस्कार करना चाहा कि लारी एक 'गड्ढे में से गुजरी और गोया भूंचाल से गुज़र गई।'

—(अजंता से आगे)

कृष्ण चन्दर ने अपना बचपन कश्मीर की वादियों में व्यतीत किया इसी कारण उनकी अक्सर यादें कश्मीर से जुड़ी हैं। शुरू में उन्होंने कश्मीर-सुषमा पर कहानियां लिखीं परन्तु उन्हें शीघ्र ही एहसास हुआ कि यह केवल तसवीर का एक रुख़ है। इस स्वर्ग के दूसरी ओर एक नरक भी बसा हुआ है जिसकी तरफ

की दृष्टि कम जाती है। इसका कारण कृष्ण चन्दर वस्तुत: प्रगतिवादी हैं। उनका हृदय मानवतावाद, शान्ति और इन्सानियत से भरा पड़ा है। इनके यहाँ जिस तरह का सौंदर्य-चित्रण मिलता है वह अनुपम है।

कृष्ण चन्दर की कहानियों के साथ-साथ पाठक जगत को उनके उपन्यास भी उपलब्ध हुए। उनका पहला उपन्यास 'शिकस्त' के नाम से 1943ई० में प्रकाशित हुआ जो उन्होंने सिर्फ 21 दिन में कश्मीर के गुलमर्ग होटल में रह कर लिखा। बिखराव बेचैनी और व्यथा से भरपूर यह एक ऐसा उपन्यास है जिसको कृष्ण चन्दर ने, कश्मीर की प्राकृतिक सुषमा के रूमानी पृष्ठभूमि में लिखा गया पुंछ की पृष्ठभूमि में लिखा गया एक उपन्यास है। 'तूफान की कलियां', 'जब खेत जाने', 'सड़क वापस जाती है', 'दूसरी बर्फबारी के बाद' आदि जैसे कृष्ण चन्दर के उपन्यासों' में कश्मीर की सुन्दरता अपनी समग्रता के साथ उभर आई है। इस खूबसूरती के साथ इन उपन्यासों में कश्मीर में रहने वालों की विवशता और बेचारगी भी यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होती है। कृष्ण चन्दर के उपन्यासों में कश्मीर की खूबसूरती के साथ-साथ यहां की श्रमशील जनता का भरपूर प्रतिनिधित्व भी मिलता है। वह कश्मीर की सुन्दरता से अत्यन्त प्रभावित थे। उन्हें यहां की असहाय जनता में इसलिए दिलचस्पी थी क्योंकि यह बहुत ही परिश्रमी है पर इतना श्रम करने के बावजूद भी दरिद्रता का जीवन व्यतीत करती हैं। वे उनकी सुख-सम्पन्नता के इच्छुक थे और चाहते थे कि दुनिया की सभी क़ौमों के साथ-साथ यह क़ौम भी प्रगति की तरफ अग्रसर हो। उनके अनुसार संसार भर के लोग इनकी मेहनत की दाद देते हैं परन्तु उनकी विवशता, असहायता तथा दरिद्रता पर कोई भी ध्यान नहीं देता। इन सभी बातों की चर्चा करते हुए कृष्ण चन्दर स्वयं इस प्रकार लिखते हैं :—

'मेरी ज़िन्दगी के अलावा मेरे अदब में जो एहसासे जमाल किसी को मिलता है इसका मंबा भी प्रकृति है। वाक़ियत और हक़ीकत निग़ारी का पहला दरस भी मुझे एक तरह से प्रकृति ने ही दिया। कश्मीर की खूबसूरत वादियों और मरगजारों में बसने वालों की तगिंदस्ती मजबूरी, बेचारगी और गुरबत तज़ाद इस क़दर वाज़ और शदीद था कि मैं सोचे बग़ैर न रह सका कि ऐसा क्यों है। इसके सबब पर विचार करने का जो सिलसिला चला तो फिर बहुत दूर तक पहुंचा।'

—'(शख़सियत व वाक़ात जिन्होंने मुझे मुतासिर किया', जनीद अहमद, पृष्ठ 140—141)

कृष्ण चन्दर एक समाजवादी साहित्यकार थे अत: उन्हें असमान विभाजन और वर्ग संघर्ष का एहसास था। वे सम्पत्ति और श्रम की शताब्दियों

पुरानी लड़ाई से अच्छी तरह परिचित थे। उन्हें इतिहास का भी काफी अच्छा ज्ञान था. इस कारण उनकी कला में इन सभी वास्तविकताओं की विद्यमानता है। वे स्थानीय प्रकृति के रंग व सुगन्ध से अपनी कहानियों की पृष्ठभूमि तैयार करते थे।

कृष्ण चन्दर की सबसे बड़ी विशेषता उनकी दृष्टि एवं लेखन शैली थी। वे सही अर्थों में गद्य में कविता करते थे। उनकी रचनाओं के अध्ययन के पश्चात् यदि यह कहा जाए कि उन्होंने अपने युग को अत्यधिक प्रभावित किया तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी। कृष्ण श्रमप्रिय वर्ग के मित्र थे, वे अपनी लेखनी से सदा पूंजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध लड़ते रहे। उनका साहित्य उनके युग का खुला इतिहास है। यह इतिहास वह अपनी कहानियों, अनेक उपन्यासों, रिपोर्ताजों, नाटकों, फीचरों और निबन्धों में प्रस्तुत कर चुके हैं। यह सारा साहित्य प्रगतिवादी है और जनता की ज़िन्दगी के साथ गहरी समानता रखता है।

कृष्ण चन्दर के समकालीनों में से मन्टो और राजेन्द्र सिंह बेदी उल्लेखनीय हैं। ये लोग लगभग साथ-साथ उभरे और डॉक्टर ब्रज प्रेमी के अनुसार—उर्दू कहानी का त्रिकोण कहलाये। यद्यपि वेदी ने उन दोनों की तुलना में बहुत कम लिखा लेकिन सोच-समझ कर लिखा और अपनी कलात्मक ऊंचाई बरक़रार रखी। कृष्ण चन्दर ने अपने कवित्वपूर्ण गद्य से पढ़ने वालों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया और मन्टो कहानी कहने का गुर जानते थे। कृष्ण चन्दर लगातार लिखते रहे और शीघ्र ही अपनी धाक जमाने में सफल रहे। उनके विषयों में नवीनता है और वे अपने विचारों को निराले ढंग से प्रस्तुत करते हैं। उन्होंने अपनी सुन्दर कहानियों से न केवल जनता का मन जीत लिया बल्कि भिन्न दृष्टिकोण रखने वाले साहित्यकारों को भी प्रभावित किया। यहां तक कि मन्टो जैसा स्वाभिमानी साहित्यकार भी 'वाह-वाह' कह उठा।

कृष्ण चन्दर की कहानियों और उपन्यासों में हास्य-व्यंग्य की भरपूर झलकियां मिलती हैं। वे अपने युग के सभी सम सामयिक व्यंग्यकारों में एक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। यह वात उल्लेखनीय है कि उन्होंने अपनी साहित्यिक यात्रा का आरम्भ व्यंग्य-लेखन से किया और अपने फ़ारसी के अध्यापक पर एक हास्यात्मक रेखा चित्र लिखा। 'हवाई क़िले' कृष्ण चन्दर के हास्यात्मक निबन्धों का पहला संग्रह है। यह उर्दू के हास्य-व्यंग्य में मील पत्थर का स्थान रखता है। इसके अतिरिक्त उनकी बीसियों रचनाओं में हास्य की चाशनी मिलती है। जिनमें पुराने ख़ुदा', 'तीन गुण्डे', अन्नदाता', 'नये गुलाम', 'किताब का कफ़न', 'ज़िन्दगी के मोड़ पर', 'लाला घसीटा राम', 'नागमणि', 'फिल्मी कायदा', 'जानीवाकर और शेर', 'समन्दर दूर है,' 'एक गिरिजा एक खन्दक' 'बड़े

आदमी', 'बादशाह', 'महालक्ष्मी का पुल', 'बातें' आदि उल्लेखनीय हैं। कृष्ण चन्दर के लेख भी पढ़ने योग्य हैं। यद्यपि उन्होंने इस विधा की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया परन्तु फिर भी उनके कई लेख पढ़ने योग्य हैं 'गुसुलियत टोपवाला', 'जान पहचान', 'रोना', 'हवाई क़िले' कृष्ण चन्दर के सफल लेख कहे जा सकते हैं। कृष्ण चन्दर के नाटक और फीचर भी चर्चा योग्य हैं। 'क़ाहिरा की एक शाम', 'हजामत', 'शिकस्त के बाद', 'दरवाज़ा' और 'मिस बेला बॉटलीवाला' उनके अच्छे नाटक हैं। जो उर्दू के नाटकों में अपना एक अलग स्थान रखते हैं।

कृष्ण चन्दर की कला मानसिक विलासिता की कला नहीं। वे अपनी कहानियों और उपन्यासों से केवल लोगों का मन नहीं बहलाते अपितु अपने युग की सभी बुराइयों से परिचित कराते हैं। ऐसे भी जो नाकारा हैं और वे भी जिनके सहारे समाज आगे बढ़ता और संवरता है। इनके चरित्रों में मिल मज़दूर भी हैं और किसान भी, फुटपाथ पर सोने वाले भी और ईरानी पुलाव खाने वाले भी। फिल्मी लोग भी और नौकरी पेशा भी चरित्र-चित्रण में उन्हें विशेषज्ञता प्राप्त है। उनकी कहानियों में वास्तविक एवं जीते-जागते चरित्र दृष्टिगोचर होते हैं। कृष्ण चन्दर को भाषा पर काफी अधिकार प्राप्त है। उनमें हिन्दी की पकड़ भी है, इसलिए उनकी रचनाओं में हिन्दी और उर्दू का मिश्रण मिलता है इन पर उनका कवित्वमय गद्य सोने पर सुहागे का काम देता है। वे सुन्दर उपमाएं और रूपक भी प्रयोग में लाते हैं और मुहावरे तथा कहावतें भी। दृश्य-चित्रण में भी कृष्ण चन्दर अनुपम हैं। वे शब्दों की जादूगरी से बहुत ही मनोरम दृश्य कागज़ पर उतारते हैं जो बिलकुल वास्तविक से लगते हैं। कृष्ण चन्दर की सदाबहार लेखनी सदा पंखुड़ियां बिखेरती रही है। पाश्चात्य साहित्य के गम्भीर अध्ययन ने उनकी सोच व दृष्टि को विशालता प्रदान की। उन्होंने नये-नये प्रयोग भी किये हैं और उर्दू कहानी को उस शिखर पर पहुंचा दिया है जहां वह विश्व की किसी भी कहानी के साथ आंख मिला सकती है। कृष्ण चन्दर की कृतियों का अनुवाद संसार की लगभग हर भाषा में हो चुका है।

अनु० प्रो० पृथ्वी नाथ मधुप

पं० गिरधारी लाल डोगरा

□ मनसाराम 'चंचल'

प० गिरधारी लाल डोगरा का स्मरण आते ही मन-मस्तिष्क में एक भव्य व्यक्ति की कल्पना उभरती है। चेहरे पर शांति, मृदुहास, ओजपूर्ण वाणी, सरल स्वभाव स्पष्टवादिता, सहिष्णुता, दूरदर्शिता, हास-परिहास, गाम्भीर्य और भोलापन। इन सब की जैसे वे पुंजीभूत इकाई थे।

वे अजेय थे और अजात शत्रु भी।

लोग परोक्षतः भले ही विरोध, ईर्ष्या, द्वेष या स्पर्धा करने वाले हों। पर उनके समक्ष वे नतमस्तक हो जाते थे, जैसे उनमें कोई सम्मोहिनी शक्ति हो। मैंने बड़े-बड़े डींगें हांकने वाले लोगों को लोग उनसे मिलने के लिए उत्सुक, प्रयत्नशील देखा है। मैंने वे निर्धन, पिछड़े और असहाय भी देखे, जिन की उन तक पहुंच सहज थी। उनके द्वारा हर व्यक्ति के लिए खुले थे और उनकी कोठी पर सुबह शाम एक मेला-सा लगा रहता।

डोगरा साहब सही मानों में कांग्रेसी, महात्मा गांधी के अनुयायी थे। उन्होंने उम्र भर खादी पहनी, महात्मा गांधी के आदर्शों पर चले और जनता जनार्दन की सेवा की। वे गरीब और दलित लोगों के मसीहा थे। वे हर एक के दु:ख सुख के सहभागी थे। उनके चले जाने से तो मानों जम्मू प्रदेश का पिता नहीं रहा।

जम्मू व कश्मीर के आर्थिक पुनर्निर्माण में डोगरा साहव की विशेप रुचि थी। उन द्वारा निर्मित बजट सन्तुलित और विकास मूलक होते थे। अधिकारी-गण उनका सम्मान एक मन्त्री ही नहीं बल्कि एक महापुरुष के रूप में करते थे। कोई भी मुख्यमंत्री हो, वह हर खास मसले पर उन का परामर्श लेता व मानता था। उन्होंने कभी किसी अधिकारी को कठोर शब्द नहीं कहे, बल्कि प्रेम से उसे समझाया व उचित परामर्श दिया।

उन का और हमारा गांव बिल्कुल पास-पास था। इतना पास कि डोगरा साहब प्राईमरी तक हमारे स्कूल के गांव में ही पढ़े। दोपहर प्राय: हमारे यहां ही बिताते। मेरी मां को वे अपनी मां जैसा आदर देते थे। वैसे भी मेरे पिता और डोगरा साहब के पिता श्री भीमामल जी मित्र थे और यह मित्रता उन्होंने अन्तिम समय तक निभाई।

मुझे स्मरण है, मैं अभी बहुत छोटा था और प्रतिदिन पिता जी के साथ तालाब पर नहाने जाया करता था। एक दिन एक व्यक्ति ने तालाब के दूसरे किनारे से आवाज़ लगा कर पिता जी से पूछा, "पण्डित जी, आप को विश्वास है कि 'भैया मेला' के भीमा मल का गिरधारी वज़ीर बनेगा?" पिता जी ने कहा कि "हां, ग्रह तो यही बताते हैं।" इस पर सभी खिलखिला कर हंस पड़े कि एक पिछड़े क्षेत्र के एक निर्धन परिवार के बच्चे के लिए यह भविष्यवाणी हास्यास्पद थी। लेकिन यह भविष्यवाणी कितनी सच्ची निकली, प्रत्यक्ष है।

डोगरा परिवार की दरिद्रता के दिन, उनके जन्म के साथ बदलने लगे। दूसरों की दुकानों पर काम करने वाले उनके पिता व चाचाओं ने मेहनत से मिलकर पैसा कमाया और मेंहदी, हल्दी और धूप की दुकान खोली। जो बाद में अमृतसर में "भीमा मल शालिग्राम" के नाम से बहुत बड़ी थोक की प्रसिद्ध दुकान बन गई जिस का व्यापार पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत (अब पाकिस्तान) पंजाब उत्तर प्रदेश और राजस्थान तक फैल गया। इसी के बलबूते पर श्री डोगरा ने हिन्दू-कालेज अमृतसर से बी० ए० और ला-कालेज लाहौर में एल० एल० बी० पास किया।

लाहौर में ही उनका सम्पर्क साम्यवादी दल से हो गया। और वे कामरेड धन्वन्तरी डांगे और दूसरे नेताओं के सम्पर्क में आए। बाद में गांधीवादी विचार-धारा को अपनाया जिसे अन्तिम क्षण तक अपनाए रखा। छात्र जीवन से खादी का सफेद कुर्त्ता पायजामा और जैकेट उन का लिबास बना रहा।

उन्होंने एक घटना सुनाई कि लाहौर में साम्यवादी आंदोलन के दौरान उन्हें एक बार पैम्फलैट बांटने का दायित्व सौंपा गया जो भी ऐसे पैम्फलैट बांटता, उसे गिरफ्तार कर लिया जाता था। उन्होंने पैम्फलैट लेकर पायजामे के नेफे में रख कर एक चना फिरोश को देने शुरू किए, जोकि लाहौर के बड़े डाकखाने के बाहर छाबा लगा कर चने बेचा करता था और हर कम्युनिस्ट वर्कर से वहां से एक-एक आने के चने खरीदने को कहा, जिस से छाबे वाले की आय भी बढ़ी।

प्रतिदिन पैम्फलैट बांटे जाने से अंग्रेज सरकार परेशान हो उठी और उस पैम्फलैट बांटने वाले व्यक्ति की तलाश की जाने लगी, एक दिन सी० आई०

डी० ने डोगरा साहब का पीछा किया। डोगरा साहब को आभास हो गया। और ढीली-ढाली चाल से वे अनारकली बाजार में एक सिनेमा हाल में जा पहुंचे। और बाहर पोस्टरों को देखकर अपनी ठेठ डोगरी में प्रशंसा करने लग पड़े और सी० आई० डी० उन्हें एक 'गंवार पहाड़ी' समझ कर वापिस आ गई। बाद में साम्यवादी दल और सरकार में समझौता हो गया और डोगरा साहब गिरफ़्तार न हो सके।

इसी दौरान, उनका सम्पर्क पंजाब के कांग्रेसियों डा० सैफुदीन किचलू और डा० सत्यपाल के अलावा जम्मू व कश्मीर के शेख मुहम्मद अब्दुल्ला, बख्शी गुलाम मुहम्मद और सादिक शाह से हुआ। खान अब्दुल गफ्फार खां के बेटे खान वली खां से उन की मित्रता ला-कालेज में ही थी। डोगरा साहब लाहौर में ही कांग्रेसी और कम्युनिस्ट कार्यकर्त्ताओं के साथ काफी घुल-मिल गये थे। यही कारण था कि वे जब विधि-स्नातक बन कर जम्मू आए तो वकालत के साथ-साथ, उनकी राजनैतिक गतिविधियां काफी विस्तृत हो गईं और उनकी गणना नैशनल कान्फ्रैंस के नेताओं में की जाने लगी।

सन् 1947 में विभाजन के बाद जब राज्य में भी दंगे आरम्भ हुए और महाराजा हरिसिंह ने भारत विलय के बाद नैशनल कान्फ्रैंस की सरकार में भागीदार बनना मान लिया तो श्री डोगरा जिला कठुआ में एमर्जैंसी आफिसर बनाये गये। इस पद पर काम करते हुए उन्होंने शांति-स्थापना, पुनर्वास और अपहृताओं की वापसी का भव्य कर्त्तव्य निभाया।

सन् 1943 में जब शेख मुहम्मद अब्दुल्ला के नेतृत्व में राज्य में प्रथम लोकप्रिय सरकार बनी, तब वे राज्य के वित्तमंत्री बनाये गये सम्भवत: वे सब से कम-उम्र के थे। तब से शेख मुहम्मद अब्दुल्ला के पुन: सत्ता सम्भालने तक 27 वर्ष तक राज्य के वरिष्ठ मन्त्री रहे। और इस दौरान उन्होंने 22 बजट पेश किये। वे तीन बार, कुछ समय के लिये मन्त्रीमण्डल से बाहर भी रहे। एक बार 1957 में बख्शी गुलाम मुहम्मद से भेद-भाव के कारण श्री सादिक के साथ मन्त्रीमण्डल और नैशनल कांफ्रैंस से अलग हुए थे और कांफ्रैंस के कुछ ही समय बाद बख्शी साहब को उनसे समझौता करना पड़ा। दूसरी बार शम्सुदीन की तीन मास की सरकार के समय और तीसरी बार श्री सादिक के नेतृत्व में मन्त्रीमण्डल गठित होने पर। तब भी वे योजना बोर्ड के अध्यक्ष बनाये गये। लेकिन कुछ ही समय बाद उन्हें मंत्रिमंडल में वित्त मन्त्री का पदभार सम्भालना पड़ा।

जब कामराज प्लान के तहत बख्शी गुलाम मुहम्मद को मुख्यमंत्री पद छोड़ना पड़ा तो बख्शी साहब ने श्री गुलाम मुहम्मद सादिक के स्थान पर

ख्वाजा शमस उद्दीन को मुख्यमंत्री निर्वाचित करवा दिया और इस प्रकार श्री सादिक श्री डोगरा व उनके सहयोगी मन्त्रीमण्डल से बाहर हो गये। इस पर आश्चर्य व्यक्त करते हुए डोगरा से पूछा गया कि डोगरा साहब, यह क्या हो गया? तब उन्होंने कहा कि यह बख्शी साहब की भारी भूल है। इससे उनका भविष्य ही समाप्त हो गया है। आखिर हमने मन्त्रीमण्डल बनाना और चलाना है। अगर बख्शी साहब हमें स्वयं सहयोग देते तो उम्र भर एहसान जताते। इस प्रकार ऐसा कर के उन्होंने अपना असली रूप सामने ला दिया और अब यदि हम मन्त्रीमण्डल बनाएंगे तो अपने बलबूते पर।

और हुआ भी यही। तीन महीने तेरह दिन के बाद शमस मन्त्रीमण्डल का पतन हो गया और ख्वाजा गुलाम मुहम्मद सादिक ने मुख्यमंत्री पद का कार्यभार सम्भाला। इस मन्त्रीमण्डल में भी शुरू में डोगरा साहेब को योजना कमीशन का अध्यक्ष बनाया गया, लेकिन कुछ ही दिनों बाद वित्तमन्त्री पद का भार उनके ही कन्धों पर आन पड़ा।

श्री सादिक के निधन के बाद जब सैयद मीर कासिम मुख्यमंत्री बने तब भी श्री डोगरा साहब कुछ समय के लिए मन्त्रीमण्डल से बाहर रहे, लेकिन कुछ मास बाद ही उन्हें मन्त्रिमण्डल में लेना पड़ा। इसके बाद शेख मुहम्मद अब्दुल्ला द्वारा मन्त्रीमण्डल के गठन तक वित्त वे मन्त्री बने रहे।

वे लगभग 27 वर्ष मन्त्रीमण्डल में रहे और इस दौरान उन्होंने 22 बजट पेश किए।

शेख अब्दुल्ला मन्त्रीमण्डल में एक बार कांग्रेसी मंत्रियों के सम्मेलन की बात चली तो मैंने उनसे पूछा कि आप भी मन्त्रीमण्डल में सम्मिलित होने जा रहे हैं तो उन्होंने उत्तर दिया, 'पहले तो कांग्रेसी सदस्यों के मन्त्रिमण्डल में सम्मिलित होने की सम्भावना ही नहीं है और यदि ऐसा हुआ तो मैं सम्मिलित नहीं हूंगा, क्योंकि जब मैं मन्त्रिमण्डल से बाहर होता हूं तो टाल (लम्बा) होता हूं और मन्त्रीमण्डल में आकर मैं छोटा हो जाता हूं और शेख साहब के मंत्रीमंडल में मैं और छोटा हो जाऊंगा।" हुआ भी यही कि डोगरा साहब के इन्कार के बाद कोई कांग्रेसी उस मंत्रीमंडल में सम्मिलित नहीं हुआ।

डोगरा साहब का समस्त राज्य के लोगों से सीधा सम्पर्क था और वे प्रायः सभी से परिचित थे। चुनाव के दिनों वे कभी सभाएं नहीं करते थे, न जलूस ही निकालते थे, बल्कि एक-एक व्यक्ति से सम्पर्क स्थापित करते। और सभी उनके आगे नतमस्तक हो जाते थे। यही कारण था कि वे चुनावों में सदा विजयी रहे। चुनाव चाहे विधानसभा के हों या संसद के। वे विधान सभा में

भी सदा उत्तम स्थिति में रहे और संसद में भी उन का शुमार प्रमुख सदस्यों में होता रहा।

डोगरा साहब के सोचने का ढंग अपना था। वे विरोधी की भी सहायता करते और कभी किसी को नुक्सान पहुंचाने का प्रयत्न नहीं करते थे, बल्कि उसे भी लाभ पहुंचाते थे। वे बड़ी से बड़ी बात सहज भाव से कह देते और किसी की तीखी बात भी सहन कर लेने की शक्ति रखते थे।

एक बार चुनाव के दौरान एक दो अध्यापक उनके विरुद्ध ज़ोरदार प्रचार करने लग पड़े। इस पर डोगरा साहब के कुछ मित्रों ने उन्हें सुझाव दिया कि कुछ देर के लिए उन्हें कहीं बाहर तबदील कर दिया जाए। लेकिन डोगरा साहब ने मज़ाक में बात टालते हुए कहा कि यदि दो अध्यापक मुझे हटा सकते हैं तो मुझे अवश्य हटना चाहिए।

इसी प्रकार उनका एक अन्य विरोधी जिसने चुनाव में उनके विरुद्ध धुंआंधार प्रचार किया था, चुनाव परिणाम के ठीक बाद उनके पास अपने भाई को लेकर आया और कहा कि इसे कहीं नौकरी दिलवा दीजिए। डोगरा साहब ने व्यंग्य से कहा कि जिस को जिताने के लिये तुम ने दिन रात एक कर दिया, वह तुम्हारे भाई को एक नौकरी भी नहीं दिलवा सकता ?

उसके चले जाने के बाद उन्होंने मुझे एकांत में ले जाकर कहा कि इसने एक जनून में अपना जीवन तो तबाह कर लिया है। अब भाई का भी करेगा। इसलिए कल तुम इस के भाई को समझा कर अकेले मेरे पास ले आना। उस का काम बन जाएगा। ऐसा ही हुआ, मैं उसे लेकर दूसरे दिन डोगरा साहब की कोठी गया और उसे नौकरी मिल गई। ऐसी थी उनकी सरल सहृदयता और उदारता।

वे एक सुलझे हुए सांसद थे। विधान सभा हो या संसद, उनका उत्तर या भाषण सन्तुलित, तर्कपूर्ण, तथ्यों पर आधारित और हल्के-फुल्के विनोद से पूर्ण होता था। मुझे स्मरण है विधान सभा के एक सदस्य, जो पहले एक अध्यापक थे, भाषण पर टिप्पणी करते हुए कहा, माननीय सदस्य एक योग्य अध्यापक रहे हैं और छात्र इनके भाषण को बड़ी तन्मयता से सुनते थे। आज वह अध्यापन क्षेत्र छोड़ कर विधायिका के सदस्य हैं, लेकिन उनका भाषण आज भी वैसा ही है। मगर माननीय सदस्य यह अवश्य मानेंगे कि क्लास रूम और असैम्बली के भाषण में अन्तर होता है। आशा है, अगले सत्र तक वे संसदीय भाषण भी उसी अधिकार से देंगे।

एक अन्य सदस्य के, जो उनके मित्र थे, के बजट पर दिए गए आलोचनात्मक भाषण पर चुटकी लेते हुए उन्होंने कहा कि मैं और माननीय सदस्य

सहपाठी रहे हैं। वे हिसाब में तब कमज़ोर थे। ऐसा लगता है, आज भी उसी प्रकार चल रहे हैं। इस पर सदन ठहाकों से गूंज उठा।

मेरे एक सहयोगी, जो बाद में विधान सभा के सदस्य निर्वाचित हो गए, अपने अभिनयपूर्ण और लच्छेदार भाषणों के कारण मशहूर थे। एक दिन वे डोगरा साहेब की बजट मांगों पर भाषण कर रहे थे और बार-बार प्रैस गैलरी की ओर देखते भी जाते थे।

डोगरा साहब ने उन पर व्यंग्य कसते हुए कहा, "माननीय सदस्य, बहस में इतनी दिलचस्पी नहीं लेते, जितनी कि खबर छपवाने में।

एक बार विधान सभा में ही एक्साइज़ विभाग की मांगों पर बहस हो रही थी तो एक सदस्य ने आरोप लगाया कि सरकार शराब की दुकानें खोल कर शराबनोशी को बढ़ावा दे रही है। अपने उत्तर में डोगरा साहब ने कहा कि जिन लोगों ने शराब पीनी है, पीनी है। यदि हम सरकारी दुकानें बंद कर दें तो वे भट्ठी की पिएंगे और मरेंगे। हमें कौन अक्लमंद कहेगा, यदि हम सरकार की आमदनी घटाएं और शराब पीने वालों को मौत के मुंह में धकेल दें।

और अन्त में उन का एक संस्मरण मुझे अक्सर याद आता है। सर्दियों के दिन थे। हल्की-हल्की बून्दा-बांदी हो रही थी। मैं और मेरे मित्र आर० के० शर्मा उनके रिटायरिंग रूम में आराम से बैठे काफी पी रहे थे कि एकाएक दरवाज़ा खुला और देखा, सामने डोगरा साहेब खड़े थे।

उन दिनों असेम्बली का सैशन चल रहा था और डोगरा साहेब असेम्बली गए थे, जो मण्डी मुबारिक में था। सचिवालय और असेम्बली भवन में एक किलोमीटर का अन्तर था। मैंने पूछा, "आप असेम्बली नहीं गए ?" वे बोले, वहीं से आ रहा हूं। बात दर-असल यह है कि गांव का एक बूढ़ा आज मुझ से मिलने आने वाला था। वह अभी तक नहीं आया। मुझे पता है कि उसे कोई अन्दर नहीं आने देगा। इसलिए मैं चला आया। आप थोड़ी-थोड़ी देर बाद उस का पता लेते रहिये। ऐसा न हो कि वह बाहर ही बैठे ठिठुरता रहे। और वे चले गए।

ऐसे थे डोगरा साहब जिन्हें आज भी लोग सचमुच 'इन्सान' के रूप में याद करते हैं। □

ठाकुर पुंछी

□ अर्जुनदेव मजबूर

उर्दू के प्रख्यात उपन्यासकार ठाकुर पुंछी का ज़िक्र आते ही मेरे सामने वे दिन सजीव हो उठते हैं जो मैंने उनके साथ दिल्ली में बिताये थे। उनका यह वाक्य भी मेरे मस्तिष्क में अंकित हो गया है कि—दिल्ली में कहीं काम के लिए आना जाना हो तो प्रत्येक प्रकार के वाहनों का उपयोग करना चाहिए। एक सुहृद व्यक्तित्व, कहानी कला और उर्दू साहित्य को कुछ देने की ललक, एक भव्य लेखनी और जीवन के अनेक गूढ़ अनुभव—ये थे उस साहित्यकार के लक्षण जिसे मैंने बहुत करीब से देखा है।

ठाकुर पुंछी का जन्म 31 दिसम्बर 1922 ई० को पुंछ नगर के जरनैली मुहल्ले में ठाकुर भीमसेन वज़ीर के यहां हुआ, भीमसेन राजा सुखदेव सिह के ए० डी० सी० थे। पुंछ का अपना लम्बा इतिहास है। सॉल्ट रोड (नमक मार्ग) यहां से केवल 45 किलो मीटर की दूरी पर स्थित है। यहीं से सुप्रसिद्ध मुगल रोड भी गुज़रता है। पुंछ के ही समीप लोहर कोट के स्थान पर राजा त्रिलोचन पाल ने सुलतान महमूद गज़नवी को हराया था और उसे आगे कश्मीर की ओर बढ़ने से रोका था "नूरी छम्ब", "बहराम गला" और बफलियाज़" के स्थान पुंछ क्षेत्र में ही स्थित हैं। नूरी छम्ब का नाम जहांगीर बादशाह ने रखा था। वे इस जलप्रपात पर तेरह बार ठहरे थे। बहराम गला का नाम शक्तिशाली सामन्त बहराम नायक के नाम पर पड़ा है। बहराम जहांगीर को यात्रा के लिए हर तरह की सुविधाएं देता था। जहांगीर की एक कनीज़ के साथ उसका अगाध प्रेम था। इस प्रेम कथा की भनक जब नूरजहां के कानों तक पहुंची तो कनीज ने नूरी छम्ब पर आत्महत्या कर ली और अन्त में बहराम ने भी अपनी प्रेमिका के लिए आत्महत्या की। यह कथा आज भी इस इलाके में प्रसिद्ध है। बफलियाज़, जो पुंछ से 29 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है, के

सम्बन्ध में कहा जाता है कि सिकन्दर महान के घोड़े बुनिफेल्स (Bunifales) की मृत्यु इसी गांव में हुई थी। इसीलिए इस गांव का नाम बफलियाज़ पड़ा।

राजतरंगिनी के अनुसार 850 ई० में पुंछ एक स्वतन्त्र राज्य बना। घोड़ों का व्यापारी राजा नर इस राज्य का राजा बना दिया गया। यह भी धारणा है कि पुंछ का नाम पुलुस्त्य ऋषि के नाम पर पड़ा है। उन्होंने काफी समय तक यहां उपासना की। पुलुस्त्य से प्रिन्तुस, प्रिन्तुस से प्रूंस और प्रूंससे पूंछ शब्द की व्युत्पत्ति हुई। कश्मीरी में आज तक पुंछ को प्रूंछ कहते है। कल्हन इसका नाम परनोत्स बताता हैं। 1819 ई० में पुंछ पर महाराजा रंजीतसिंह ने अधिकार किया और 1885 से 1947 तक यह क्षेत्र डोगरा शासकों के अधीन रहा।

प्रकृति के इस रंगीले प्रदेश की प्रसिद्धि यहां के सुन्दर स्थलों और पहाड़ी जीवन के कारण दूर-दूर तक फैली है। इसी परिवेश में जन्मे ठाकुर की कहानियों में पुंछ साकार हो उठा है। इनके पिता भी साहित्य में रुचि रखते थे इसका प्रभाव ठाकुर पुंछी पर भी अवश्य पड़ा। पुंछ के एक लेखक खुशदेव मैंनी की पुस्तक—"पुंछ"—के अनुसार ठाकुर पुंछी को संगीत और नाटकों में खासी रुचि थी। उन्होंने सोलह वर्ष की आयु में, दसवीं की परीक्षा पुंछ में ही उत्तीर्ण की। तत्पश्चात वे शिक्षा के लिए जम्मू आए। यहां उन्होंने उस समय के प्रिंस आफ वेल्ज़ कालेज में शिक्षा ग्रहण की। श्री मैंनी के अनुसार ठाकुर ने पहली कहानी कालेज के दिनों में ही लिखी और यह कहानी जिसका नाम "कालकी" था जम्मू के सुप्रसिद्ध उर्दू साप्ताहिक—चांद में छपी।

"कश्मीर में उर्दू" नामक पुस्तक के रचयिता प्रो० अब्दुल कादिर सरवरी का कहना है कि ठाकुर पुंछी की पहली कहानी "राजा" कालेज की पत्रिका—"तवी"—में छपी थी। किन्तु वे अपनी पहली कहानी—"खानाबदोश"—मानते हैं। ठाकुर ने कालेज जीवन से ही साहित्य लिखना आरम्भ किया और सर्वप्रथम उनकी रुचि कहानी लेखन की ओर अग्रसर हुई।

विद्यार्थी जीवन में ही उन्होंने पुंछ नगर में "कृष्णा ड्रामाटिक क्लब" की नींव रखी। उन्होंने यहीं पर "शारदा", "चित्रलेखा" और "सिकन्दर" नाम के नाटकों का मंचन किया। बी० ए० की डिग्री प्राप्त करने के पश्चात वे "फूड एंड सप्लाईज़" विभाग में एक क्लर्क की हैसियत से भर्ती हुए। उनका लिखना इस बीच जारी रहा और वे जम्मू व कश्मीर से बाहर की पत्रिकाओं में छपने लगे। उन्होंने 1946 में जम्मू के एक बड़े वजीर घराने में विवाह किया। 1948 में रेडियो स्टेशन बना। इसके केन्द्र-

निदेशक प्रख्यात उर्दू कहानीकार श्री राजेन्द्र सिंह वेदी नियुक्त हुए। ठाकुर पुंछी समाचार वाचक के पद पर जम्मू स्टेशन में आए। 1950 में आकाशवाणी दिल्ली में कश्मीरी और डोगरी के समाचार विभाग स्थापित किए गए और इस प्रकार ठाकुर साहब दिल्ली आकाशवाणी से सम्बद्ध हुए :

दिल्ली में आकर ठाकुर को अध्ययन और लेखन के लिए एक विमुक्त वातावरण और विशाल क्षेत्र मिला। देश के सम्मुख अनेक समस्याएं थीं। 1947 में देश का बंटवारा हो चुका था और दिल्ली में यह सारी उथल-पुथल आंखों से देखी जा सकती थी। कई परिवार बंटवारे की नज़र हो गए। कई रिश्ते टूटे और कई नये सम्बन्ध स्थापित हुए। आज़ादी के पश्चात् भारतीय भाषाओं में लेखन को बढ़ावा मिला। दिल्ली आकर ठाकुर साहब ने जब लेखनी हाथ में ली तो अन्तिम समय तक लगातार लिखते रहे। ठाकुर पुंछी की चर्चित कहानियों में से

1. ज़िन्दगी के मोड़ 2. चिनारों के चांद 3. मौत के साये तले 4. ढोलक बजती है 5. अन्धे की बीबी 6. ज़ाफरान (केसर) 7. दसौंधासिंह 8. वे ख्वाब किवाड़ 9. बर्फ के आंसू और 10 एक बीते युग की परछाईं इत्यादि जैसी कहानियां हैं।

प्रोफेसर सरवरी के अनुसार ठाकुर साहब की कहानियों में चिन्तन की परिपक्वता, कहानी की बुनतर में निपुणता और भाषा का बहाव परिलक्षित होता है। दिल्ली में रहते हुए उनकी कहानियां उर्दू शीराज़ा और हमारा अदब जो रियासती कल्चरल अकादमी के प्रकाशनों में छपती रहीं।

ठाकुर ने दिल्ली में बाईस वर्ष का लेखकीय जीवन व्यतीत किया। उनकी रचनाओं में जहां शहर का मध्यवर्गीय जी रहा है वहां दूर पहाड़ियों में रह रहे ग्रामीणों के हृदय की धड़कनें, उनके सुख-दुख। उनकी संवेदनाएं उन की कथाएं और सब से बढ़कर उनके गीत जीवित हैं। दिल्ली में रहते हुए उनका मन पहाड़ों की सौंधी मिट्टी, मनमोहक सौन्दर्य और इनके इर्दगिर्द बसी सादगी सरलता और इन्सानियत में डूबा हुआ लगता है। ठाकुर पुंछी की सहृदयता मानवीय अनुभूतियों के ऊंचे शिखर छूती दृष्टिगोचर होती है। वे पहाड़ी जीवन के कई छिपे दर्द और नासूर हमारी आंखों के सामने उजागर करते दिखाई पड़ते हैं।

जहां तक पर्वतीय जीवन का सम्बन्ध है, इसमें वे केवल पुंछ को ही नहीं समेटते अपितु उन की दृष्टि बलतिस्तान और कश्मीर तक को छूती है। एक सामाजिक चेतना उन्हें प्रत्येक असहाय व्यक्ति तक पहुंचाती है। "मौत की मौत"—कहानी 1978 के हमारा अदब में सम्मिलित है। यह कहानी दो

मज़दूर मित्रों की हृदय द्रावक कथा है। इनमें एक बल्ती है और दूसरा कश्मीरी। दोनों एक साथ रहते, खाते-पीते और एक दूसरे के सुख-दुःख में सम्मिलित होते हैं। अन्त में एक दिन बलती मज़दूर की अचानक मृत्यु हो जाती है। कश्मीरी मित्र उसके लिए पांच रुपये के मूल्य का रेशमी कफन लाने के लिए सारा बाज़ार घूम आता है किन्तु जिन दुकानदारों के पास उस बल्ती ने वर्षों मज़दूरी की थी उनमें से एक भी कफन बेचने को तैयार नहीं होता। अन्त में कश्मीरी मित्र उसे उसी कम्बल में दफन करने ले चलता है, जो उसने ओढ़ रखा था। रास्ते में उसे एक कुत्ते के साथ जो रेशम में लिपटा हुआ था एक जलूस मिलता है। कश्मीरी यह देखकर अत्यन्त दुखी हो उठता है।

ठाकुर की कहानियों में यद्यपि रोमांस (Romance) की पुट है किन्तु इससे उनके पात्रों के प्रस्तुतीकरण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उनके पात्र हमारे समाज के जीते जागते लोग हैं जिन के अन्तर तक पहुंचना केवल ठाकुर पुंछी जैसे लेखक का ही बूता है। उनकी कहानियों की भाषा में गगा और वितस्ता की रवानी और मीठा चुलबुलापन है। वे सच्चाई को मुहावरेदार भाषा में प्रस्तुत करते हैं। उनकी भाषा सरल किन्तु रोचक है और यही कारण है कि उनकी कहानियां लम्बी होने पर भी पाठक को बांधे रखती हैं। अपनी कला को वे उत्तरोत्तर निखारते हुए नज़र आते हैं। उनके पात्र वायवीय या कल्पना-जन्य नहीं अपितु उसी धरती के हैं।

पुंछी की कहानियों पर प्रेमचन्द का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है किन्तु किसी पात्र को देवता नहीं बनाते। वे उसके गुण अवगुण दोनों प्रस्तुत करने में कदापि नहीं हिचकचाते। उनके पात्र स्वयं आगे बढ़ते और अपने व्यक्तित्व को प्रस्तुत करते हैं।

उनकी कहानियों में सौंदर्य की वास्तविकता के अतिरिक्त नये हालात से उत्पन्न सामाजिक चेतना की झलक स्पष्ट नज़र आती है। सामन्तशाही ने जो समस्याएं लोगों की झोली में डाल दी है। उन्होंने उन की बेबाक अक्कासी की है। उनकी कहानियों और उपन्यासों में शहरी और ग्रामीण जीवन का अन्तर उनकी आर्थिक दशा के आधार पर विभिन्न मानसिक कुंठाओं को प्रस्तुत करता है।

ठाकुर का औपन्यासिक क्षेत्र—"रात के घूंघट" से आरम्भ होता है। वे दिल्ली में विस्तृत वातावरण से प्रभावित होकर उपन्यास का सहारा लेते हैं। "रात के घूंघट" के पश्चात् उन का उपन्यास "डैडी" प्रकाशित हुआ। इसके बाद "वादियां और वीराने", "यादों के खण्डर", "शमा हर रंग में जलती

है।" "प्यासे बादल", "जुल्फ के सर होने तक", "चांदनी के साये", और "अब मैं वहां नहीं रहता", प्रकाशित हुए।

प्रो० सरवरी कहते हैं कि यह साहित्यकार सामाजिक विषमता, लूट खसूट और संहारक शक्तियों के विरुद्ध, चाहे वे राजनैतिक हों धार्मिक हों या सामाजिक आवाज़ उठा रहा है।

ठाकुर साहब के कुछ उपन्यास बंगाली, पंजाबी, मलयालम और हिन्दी में अनूदित हुए। "मौत के साये" कहानी पर इन्हें सर्व भारती कहानी प्रति-योगिता में प्रथम पुरस्कार दिया गया। जिस उपन्यास ने उन्हें उर्दू-उपन्यास के क्षेत्र में उन्नत किया वह है—"वादियां और वीराने"। इस उपन्यास में पुंछ का परिवेश प्रकृति की रंगारंग पहाड़ी जीवन की वास्तविकताओं समेत प्रकाशमान होता है। इसमें बहराम गला और नूरी छम्ब का वर्णन इस बात का साक्षी है कि यह स्थल ठाकुर पुंछी को कितने प्यारे थे।

लाहौर की "श्याम वन" नाम की नई बस्ती से यह उपन्यास एक पहाड़ी रियासत (पुंछ) के एक स्थान पर बने एक बंगले तक अपनी यात्रा करके वापिस लाहौर पहुंचता है और यहीं पर इस यात्रा की समाप्ति होती है। बंगले का नाम डोवर साहिब का बंगला है। कीर्ति एक सम्पन्न घराने की लड़की है। उसकी मंगनी मदनराय जैसे अमीर अय्याश के साथ होती है। किन्तु कीर्ति एक अल्हड़, अनपढ़ पर सुन्दर और भावुक नवयुवक से जो गरीब है प्रेम करती है। कुल की मानमर्यादा उसके साथ विवाह करने में बाध्य होती है।

इस नाटकीय उपन्यास में कई स्थानों पर माधो के गाये गीत पाठक के हृदय को छू जाते हैं :—

मुख गोरी दा चन पुनेआ, मेरे नैन चकोर
अपनी हथीं आपूं बजिया, पाई प्रेम दी डोर

या

गोरी दा चित्त लगा चम्बे दिया धारा

डोगरी के यह लोकगीत अपने उपन्यास में पिरोकर ठाकुर ने अपनी धरती की भाषा को गौरवान्वित किया है और इस भाषा के गीतों द्वारा प्रेमियों के हृदय की कसक का समयोचित वर्णन किया है।

इस उपन्यास में विचित्र वृक्षों, फूलों के अतिरिक्त आकाश पर बिखरे गहरे लाल, सफेद रंगों और धरती के हरेपन का उसी प्रकार चित्रण हुआ है जैसे एक प्रेमी चितेरा बन गया हो। इस उपन्यास में गांव का सरल पर गहरा

प्रेम उभर आया है जो उन्हें अत्यन्त निराशाजनक वातावरण में सहारा देता है। इन ग्रामीणों का रहन-सहन साधारण होने पर भी शहरी जीवन की अपेक्षा भावानुभूति और प्रेम के क्षेत्र में स्वच्छ और सच्चा है।

उर्दू भाषा के सुप्रसिद्ध आलोचक डा० शकीलुल रहमान, ठाकुर पुंछी की कलात्मक पकड़, जीवन से जुड़ाव और मानसिक उतार चढ़ाव का जिक्र करते हुए कहते हैं :—

"मैंने ठाकुर पुंछी की कला में जो रोमांटिक मिज़ाज देखा है वह पारम्परिक दायरे को तोड़ता है। ठाकुर पुंछी की जीवन से सम्बद्धता कभी ढीली नहीं होती। यह दोनों बातें आज के उपन्यास में नहीं मिलतीं। देश विभाजन के बाद जो उपन्यास उर्दू में लिखे गए उनमें वह स्वाभाविकता। कलात्मकता, मनोवैज्ञानिक-पैठ, भावुक उतार-चढ़ाव और पुख्तगी नहीं जो मुझे ठाकुर पुंछी के उपन्यासों में मिलती है.....उनकी कला के साथ-साथ हमारी परम्पराओं को आगे बढ़ने का जो अवसर मिला है निश्चय ही उस की एक ऐतिहासिक हैसियत रहेगी।"

मेरे विचार में एक कहानीकार व उपन्यासकार को इस से अधिक और क्या मान मिलना चाहिये। "वादियां और वीराने" उपन्यास की जो प्रति ठाकुर पुंछी ने मुझे दी थी उसमें उन्होंने अपने हाथ से कुछ भागों पर निशान लगाये थे। सम्भवतः वे दूसरे प्रकाशन में इन भागों को निकालना चाहते थे। देखने में यह भाग एक पाठक को नहीं अखरते। किन्तु इस से यह बात स्पष्ट होती है कि वे उपन्यास की कला और भाषा के प्रति कितने जागरूक और ज़िम्मेवार थे।

इस लेख में केवल एक ही उपन्यास पर चर्चा सम्भव है। उन्होंने अपना अन्तिम उपन्यास —"अब मैं वहां नहीं रहता" कश्मीर के वटवृक्ष, चिनार के रूप में, रूपायित किया है। मुझे लगता है कि यह उपन्यास उनके उस जीवन से भी सम्बद्ध है जो उन्होंने दिल्ली में अपने एक कश्मीरी मित्र श्री शम्भुनाथ भट्ट हलीम के घर, कुछ समय रह कर बिताया। श्री भट्ट उनके गहरे मित्र थे और दो एक पुस्तकें ठाकुर साहब ने उनके नाम समर्पित की हैं।

ठाकुर का गृहस्थ जीवन कुछ सुखद नहीं रहा। उन्होंने जो कुछ अर्जित किया वह अपने प्रकाशनों अथवा मित्रों के लिए खर्च किया। वे 1970 ई० तक आकाशवाणी दिल्ली के डोगरी-यूनिट से सम्बद्ध रहे। तत्पश्चात् वे जम्मू रेडियो स्टेशन के न्यूज़ यूनिट में स्थानांतरित हुए। 14 अगस्त 1973 ई० को वे रेडियो स्टेशन से निकले, सड़क पार कर ही रहे थे कि एक जीप दुर्घटना की चपेट में

आने से अगले ही दिन वे सदा के लिये हम से अलग हो गए। उनका जीवन एक शांत सागर के समान था परन्तु इस शांति के नीचे कितने तूफान उठ रहे थे यह बहुत कम लोग जानते हैं। उन्होंने अपने लेखन से उर्दू साहित्य का दामन भरने की भरपूर चेष्टा की किन्तु स्वयं के बारे में वे फिर भी सन्तुष्ट न थे। अपने देहांत से दो सप्ताह पूर्व वे अपने बारे में स्वयं लिखते हैं :—

"कश्मीर की पुंछ रियासत के सामंतशाही वातावरण में उत्पन्न हो मेरा बाल्यकाल महलों की चार दीवारी में बीता। जवानी में आस-पास के जीवन ने कहानीकार की दृष्टि दी। पहली कहानी —"खाना-बदोश" और अन्तिम कहानी "बहुत दूर जाना है" पहला उपन्यास "डैडी" और अन्तिम—"अब मैं वहां नहीं रहता"—(प्रकाशन अधीन) है। बाईस वर्ष दिल्ली की गलियां छान कर फिर पत्थरों के नगर जम्मू आ गया हूं। कब तक इन पत्थरों पर सिर पटकना पड़ेगा, यह भगवान ही जानता है। डेढ़ दर्जन छोटे बड़े उपन्यास और दो कहानी संग्रहों के अतिरिक्त कई अच्छी और लम्बी कहानियों के मंचन और रेडियो नाटक लिखने के पश्चात् कभी-कभी सोचता हूं कि इस आयु तक आते-आते जैसे कुछ लिखा ही नहीं। इन दिनों मैं—"सूर्य समुद्र में डूबता है" उपन्यास लिख रहा हूं।"

एक कर्मठ लेखक होने के साथ वे औरों को भी लिखने की प्रेरणा देते रहते। उनके दिये और भेजे गये उपन्यास मैं उधमपुर न ला सका। हां, एक पत्र की याद मुझे आती है जो ठाकुर पुंछी ने मुझे दिल्ली से लिखा था—इस में वे कहते हैं कि उनका नया उपन्यास—"प्यासे बादल" बाजार में आ गया है। वे इस उपन्यास के साथ उर्दू की पत्रिका "बीसवीं सदी" भिजवा रहे हैं। साथ में वे मुझे प्रेरित करते हैं कि मैं अपना यात्रावृत्त शीघ्र लिखना आरम्भ करूं। इस सम्बन्ध में अपने सहयोग का भी वे जिक्र करते हैं। पत्र में यद्यपि उन्होंने तारीख नहीं दी पर डाकखाने की मोहर से यह पत्र 1960 में लिखा गया है। केवल इक्यावन वर्ष का आंतरिक संघर्ष झेल कर उर्दू साहित्य का विशिष्ठ उपन्यासकार हमारे प्रदेश को ही नहीं अपितु सारे भारतीय साहित्य को बहुत कुछ दे गया। इस प्रकार वह पुंछ के वरिष्ठ साहित्यकारों जैसे, चराग हसन हसरत और कृष्णचन्दर की परम्परा के क्षितिज पर एक और प्रकाश-पुंज की तरह उदित हुआ। ठाकुर पुंछी अभी तक मेरे ही नहीं अपितु लोगों के हृदयों में जीता है यही उस जैसे रचनाकार की सफलता है। □

गुलाम नबी डोलवाल

□ मोती लाल 'साकी'

समय का बेलगाम घोड़ा सरपट दौड़े जा रहा है।

हर वस्तु को अपनी टापों तले मसलते और रौंदते हुए।

आदि क्या है और अन्त क्या?

किसी को नहीं मालूम।

समय अथाह समुद्र, डूबते और उतराते संसार का अन्तिम विश्राम स्थल।

जिंदगी अभी है और अभी नहीं।

यही है नागार्जुन का शून्य और वेदांत का 'नेति नेति'।

काल चक्र जो सदा घूमता रहता है।

संभवत: अनुभूतियों की परतों ने ही डोलवाल के भीतर एक वास्तविक अनुभूति को जगाया था, जो संगीत बन कर उस के मस्तिष्क से उमड़ पड़ा:

किसी की डोली उठती है,
तो किसी का जनाज़ा,
रोते रहना किसी की नियति है,
और किसी के हां मेहन्दी रात का समां है।
मेरे मनभावन साजन,
हमारा मिलन तो बस एक संयोग है।

डोलवाल को स्वर्ग सिधारे अब दो वर्ष होने को आए तो चले-चलाव की

आंधी में उस अलबेले कवि की उन लोगों को भूले से भी याद नहीं आई, जो उसकी प्रशंसा करते नहीं थकते थे। समय निस्संदेह क्रूर है, लेकिन मानव की स्वार्थ-परायणता की भी सीमा नहीं। अपनी व्यस्तताओं के कारण अब कला-पारखियों और कला-प्रेमियों की कमी होती जा रही है। गायन-वादन का शौकीन डोलवाल मेरा बड़ा ही प्रिय मित्र था। एक ऐसा मित्र, जिस के संसर्ग में जीवन मचल उठता था। उसके साथ कठोर वास्तविकताओं की पतझड़ में वसन्त लुभाता और उन्मादित किया करता था।

स्मृतियों के जमघट में मुझे वह ज़माना याद आ रहा है, जब रेडियो कश्मीर श्रीनगर पर छठे दशक के आरंभ में डोलवाल की मधुर तानें गूंज उठी थीं और श्रोता इस नए कलाकार के हृदयहारी अंदाज़ से आह्लादित हो उठे थे। उसके गायन का न केवल अंदाज़ नया था, बल्कि प्रस्तुति भी नयी निराली थी। विभिन्न वाद्यों की गूंज को चीर कर गिलास बजाने की आवाज जब कानों से टकराती थी तो एक अजीब समां बंध जाता था। डोलवाल पैसे के लिए किश्तवाड़ से श्रीनगर नहीं आया था। इस फाका-मस्त कलाकार को पैसे से नहीं, बल्कि कला से प्रेम था। वह कला को बाज़ारू चीज़ बनाने के पक्ष में कभी न रहा। यदि उसमें कला का कोई स्नेही मिलता तो वह उस की राह में आंखें बिछाने से भी नहीं हिचकिचाता और यही कला-प्रेम उसे किश्तवाड़ से मोटर में बिठा कर श्रीनगर लाया।

हुआ यों कि उस समय के रेडियो कश्मीर श्रीनगर के निदेशक श्री पी० सी० चैटर्जी नये कलाकारों की खोज में किश्तवाड़ के दौरे पर गए थे। वहां उन्होंने डोलवाल की मधुर तान सुनी तो अति आनंदित हुए और वापिसी पर डोलवाल को भी अपनी गाड़ी में बिठाकर श्रीनगर साथ ले आए। इस प्रकार कश्मीरी संगीत के इतिहास में एक नई आवाज़ और नवीन कृति "चलन्त" की वृद्धि की। पहला कार्यक्रम प्रसारित होने की देर थी कि फरमायशों के ढेर लग गए। डोलवाल का कार्यक्रम सुनने के लिए मैंने स्वयं गांवों में लोगों के भारी जमघट देखे हैं। उस समय क्योंकि रेडियो आम नहीं थे, इसलिए कम्युनिटी रेडियो सैटों के इर्द-गिर्द लोग आकर बैठ जाते और कार्य-क्रम का आनंद लूटते। डोलवाल के सुर और ताल से परिचित होने का मेरा पहला साधन रेडियो ही था। ऐसा हुआ कि रसा जावदानी के रसीले गीतों से आनंदित होने का सुअवसर भी मेरे साथ-साथ, सभी कश्मीरियों को डोलवाल द्वारा ही मिला। उस समय तक रसा जावदानी का कश्मीरी कलाम प्रकाशित तो नहीं हुआ था, पर डोलवाल की बदौलत उन की रचनाएं हर खेत और खलिहान, बाज़ार और बस्ती में गुनगुनाई जाने लगी थीं। डोलवाल ने रसा जावदानी की कृतियों को जो लोकप्रियता दिलाई, उसे देखकर मुझे प्रायः महमूद शहरी की याद आती जिस

ने 'महजूर' के कलाम को अपनी शानदार आवाज़ से घर-घर पहुंचा दिया था। यहां तक मुझे याद है, डोलवाल का पहला गाना, जो चलंत के रूप में रेडियो से प्रस्तुत हुआ था, वह 'रसा' साहब का था, जिस का एक पद इस प्रकार था :

तुम ने अपना बाण राधा के हृदय के
आर पार कर दिया।
संसार दीवाना हो गया।
पिया, तुम्हें मेरी याद आएगी
तो कब आएगी।
मैं जुलेखा मिस्र के बाजारों में
दर बदर फिर रही हूं।
को यूनान के यूसुफ,
तुम्हें मेरी याद आएगी,
तो कब आएगी ?

यह गाना इस प्रकार लोकप्रिय हो गया कि छोटे बड़े सभी इसे एकांत में गुनगुनाते रहते थे और फिर महिलाएं विवाह में डोलवाल की नकल उतारते छकरी के रूप में गाती थीं।

इस के वाद काफी देर तक 'रसा' साहब के कलाम को ही डोलवाल सुर और ताल देते रहे। यह सिलसिला प्राय: 1961-62 तक चलता रहा। बाद में उन्होंने दूसरे आधुनिक कवियों की रचनाओं को अपना स्वर प्रदान किया, जिन में नादिम, मुजफ्फर आज़म और इन पंक्तियों का लेखक भी शामिल है। साज़ो संगीत, आवाज़ और सरगम के संसार के कलाकार डोलवाल के व्यक्तित्व का एक और रंग इसी दौरान एक मधुर झरने की तरह फूट पड़ा। कविता के झरने छलक उठे और डोलवाल के नाम से जाने लगे। "जांबाज़ किश्तवाड़ी' गीतों को जीवंतता प्रदान करने वाले डोलवाल ने 'जांबाज़' बन कर सुरीले और वेदना-पूर्ण गीतों को जन्म दिया। इन गीतों की तान पर यौवन की मस्त तरंगों ने थिरकना आरंभ किया। उसने आम फिल्मी गीतों को अपने विशेष अंदाज में कश्मीरी भाषा के सांचे में इस प्रकार ढाल दिया कि वे मौलिक रचनाओं का भ्रम देने लगे।

डोलवाल के व्यक्तित्व में जीवन की मधुरता कुछ इस अंदाज में सिमट आई थी कि वे मूर्त्त मधुरता दिखाई देते थे। वे दोस्तों के बेहतरीन

दोस्त थे, और शत्रुता के छल-कपट से कोसों दूर। उनके और सम्बन्ध सन् 1960 में स्थापित हुए थे और वे मेरे साथ अंतिम क्षण तक मित्रता के सूत्र में बंधे रहे। सातवें दशक में जब समाज शिक्षा विभाग में डैपुटेशन पर उन की नियुक्ति मुख्यगायक के तौर पर हुई, तो उनके साथ प्रायः मुलाकात होती रहती थी। शिक्षा की जोत जलाने के लिए वे समस्त घाटी में गीतों की तानें गुंजाते रहे। 'नादिम' साहब उन पर विशेष मेहरबान थे। उन दिनों वे समाज शिक्षा विभाग में सहायक निदेशक थे। लेकिन इस विभाग में उन की नियुक्ति अस्थाई सिद्ध हुई। सत्ताधारियों ने उन की कला को स्वीकारा अवश्य, लेकिन संरक्षक बनने में कन्नी कतरा कर निकल गए। क्षुब्ध होकर वे वन विभाग में फारैस्टर के तौर पर वापिस चले गए। रोजी-रोटी की परेशानी तो उनको नहीं थी, लेकिन सत्ताधारियों के इस व्यवहार ने 'जांबाज़' को काफी देर तक परेशानियों की घाटियों में धकेल दिया।

संभवतः 1960 की बात है। 'जांबाज' उन दिनों बटमालू (श्रीनगर) में निवास करते थे। एक दिन वे मुझे बलात अपने डेरे ले गए। खाने पीने का ऐसा प्रबंध किया कि व्याह शादियों का भोज भी मंद पड़ गया। अतिथि मैं अकेला था और खाने पीने की चीज़ें ढेरों। उस दिन मैंने स्वीकार किया कि डोलवाल केवल एक बड़ा कलाकार ही नहीं, बल्कि एक बड़ा अतिथि सेवक भी हैं। रात भर गीत संगीत की महफिल जमी रही। वह समां बंध गया जो बखाना नहीं जा सकता। मुझे 'जांबाज' की रचना के कुछ पद आज भी जब याद आते हैं तो सारा दृश्य आंखों के सामने नाच उठता है। निसार को तबला, बुलबुल को गिलास और डोलवाल को हारमोनियम बजाते अपने सामने देखता हूं। कविता के पदों का अनुवाद कुछ इस प्रकार हैं :—

तू अपने ही वायदे से फिर गया।

शालिमार के वातावरण में मिलने की टोह मुझे क्यों दी ?

मेरे प्रियतम, मैं तो तुम्हारी प्रतीक्षा किसी भी स्थान पर करूंगा।

तुम्हारी उपेक्षा मुझे तुम्हारा धन्यवाद करने से रोक नहीं पाएगी।

ऐसी ही एक अन्य रात मेरे मन में अब भी जगती है। सन् 1972 में हज़रत शेख उल-आलम के छः सौ वर्षीय उर्स के सम्बंध में कश्मीर कल्चरल आर्गेनाइज़ेशन का एक सांस्कृतिक प्रतिनिधि मंडल डोडा जिले के दौरे पर गया, क्योंकि यह ज़िला हज़रत शेख के पूर्वजों से सम्बंधित है। इस प्रतिनिधि मंडल में रशीद नाज़की, फारूक नाज़की, मशल सुलतानपुरी, मक्खन लाल कंवल, शरीफउद्दीन परवाज़ आदि के साथ मैं भी था। जिले के दौरे के दौरान

हमारा प्रतिनिधिमंडल जब किश्तवाड़ पहुंचा तो वहां श्री डोलवाल ने प्रतिनिधि मंडल के सदस्यों के अलाव स्थानीय साहित्यकारों लिए एक भोज का प्रबंध किया। साथ में गीत-संगीत का भी आयोजन था। उस रात डोलवाल ने जब प्रसिद्ध कश्मीरी गीत, "तुम्हारे दरवाज़े पर मैं ने अपनी रातें न्योछावर कीं." शानदार ढंग से झूम झूम कर गाया तो मुझे लगा कि क़िश्तवाड़ नृत्य में झूम उठा है। मैं तो जैसे उस गीत में डूब कर अपनी सुध, बुध भुला बैठा था। यों तो मुझे कई शीर्षस्थ और प्रसिद्ध गायकों को सुनने का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है, मगर बटमालू और किश्तवाड़ की उन रंगीम महफिलों को मैं आज भी यादगार मानता हूं। और एकान्त में प्रायः पुरानी स्मृतियों को ताज़ा करके अपने उदास पलों की कटुता दूर करता हूं।

जब डोलवाल ज़िंदा था तो कितने ही लोग उसकी दोस्ती का दम भरते थे। कवि लोग उन के स्वर से अपनी रचनाएं सुनने के लिए उत्सुक रहते थे, लेकिन उनके निधन के साथ ही मित्रता का भरम भी टूट गया और दोस्ती का भी। उफ़! आज उसे कोई याद तक नहीं करता।

काव्य और संगीत को ओढ़ना बिछौना बनाने वाला 'जांबाज' एक प्रेमी पति और वात्सल्य पूर्ण पिता भी था। यह उसके व्यक्तित्व का दूसरा पहलू भी था। बच्चों से वह अटूट प्यार करता था। उनके लालन-पालन और सुन्दर भविष्य के लिए सदैव प्रयत्नशील रहता। अपने सहयोगियों और प्रेमियों का उसे सदा ख्याल रहता था।

वन विभाग में नौकरी करने वालों ने तो बड़ी बड़ी सम्पत्तियां बना ली। मगर कलाकार 'जांबाज़' हमेशा कलाकार ही रहा। संगीत की लहरियों में खोया डोलवाल जंगलों को विनष्ट करके अपनी जेब गर्म नहीं कर पाया। इस लिए वह अपने सहयोगी अहलकारों से कोसों दूर रहा। गीत-संगीत ने उसे ख्याति की ऊंचाइयों पर पहुंचा दिया, लेकिन उसकी आर्थिक दशा कभी भी अच्छी न हो सकी। हम लोग कला की प्रशंसा तो करते हैं, लेकिन कलाकार की कद्र नहीं करते। यह नहीं सोचते कि कलाकार को जीवित रखने के साधन क्या हैं? जब तक कलाकार को मज़दूरों की नज़र से देखा जाता रहगा, कला के विकास की संभावनाएं कम ही होती चली जाएंगी।

कहते हैं काल कलाकार को छू नहीं सकता, लेकिन वास्तविकता हम से सर्वथा विपरीत है। हमारे समाज में तो कलाकार हर क्षण मृत्यु के समीप से गुजरता है। कलाकार यदि अपने आप को बाज़ार की वस्तु न बनाए तो उसे भुखमरी को गले लगाना होगा। हमारे जनतन्त्र में कलाकार, कवि और साहि-

त्यकार ही एक ऐसा वर्ग है, जिसके अधिकारों का भी उल्लेख तक नहीं होता। जब कि शेष हर वर्ग को कुछ न कुछ अधिकार प्राप्त हैं।

सन् 1970 के बाद डोलवाल का कश्मीर आना जाना कम हो गया था। फिर भी वह साल में दो तीन बार श्रीनगर अवश्य आ जाते, क्योंकि वे आत्मिक रूप से घाटी का ही अंग थे और फिर उनके प्रशंसक वही थे। मेरी उनसे अन्तिम भेंट संभवतः सन् 1989 की गर्मियों मे हुई थी। जब वे श्रीनगर आते तो भेंट के लिए स्वयं अकादमी के कार्यालय आते, क्योंकि वहां उन्हें अन्य मित्रों से भेंट का भी अवसर मिलता था। व्यक्तिगत भेंटों के अलावा मेरा डोलवाल से पत्र व्यवहार का सिलसिला भी चलता था। अपनी पुस्तक "गाशर" के सम्बन्ध में सन् 1965 में मेरे अनुरोध पर डोलवाल ने 19 नवम्बर 1965 में अपने एक पत्र में अपने जीवन गाथा इस प्रकार लिख भेजी :

पहचानने के लिए जो तमग़ा वालिद साहब ने मुझे दिया, वहां था मेरा नाम गुलाम नबी, जाति चूंकि मेगंनू थी, सो परम्परा के मुताविक नाम के साथ मेगंनू भी जोड़ दिया और पूरा नाम बन गया, गुलाम नबी मेंगंनू। संगीत ने मैंगनू को न जाने क्यों 'डोलवाल' बना दिया और कविता ने जांबाज़। इसलिए अब डोलवाल भी हूं और जांबाज भी। गुलाम नबी मैंगनू भी हूं, मगर न होने के बराबर। भला हो सरकारी कागज़ात का कि प्रायः अपना नाम देखने का सौभाग्य प्राप्त होता है। मरहूम वालिद साहब का नाम ख्वाजा गुलाम वली मैंगनू था। शिक्षा भी, प्रिय मित्र, न होने के बराबर है। केवल मिडिल तक छात्र रहने की अनुभूति दी थीं घरेलू परिस्थितियों ने। वर्ना हम भी आदमी थे काम के। रहने की बात पूछी है तो इतना अवश्य कहूंगा कि रहता उस कस्बे में हूं, जो संगीत की दृष्टि से कब्रिस्तान बन चुका है। जहां औरंगजेब के शासन काल में संगीत को दफन कर दिया था। क्योंकि कस्बों के पेशेवर नर्तक, नक्काल आदि उस काल के दुर्व्यवहार से तंग आकर अपने जन्म स्थान से प्रस्थान कर चुके थे। इस कस्बे को किश्तवाड़ कहते हैं।

शेष रही प्रेरणा, वह मैंने परिस्थितियों से ली है। वातावरण ने मेरी कविता लिखी है। हां, सान्निध्य रसाजावदानी का काफी देर तक मिला। दूसरी ओर सितार के तारों में कभी कभी झलक देखता हूं तो वह होती है, अपने ही किश्तवाड़ के दो स्वर्गीय सपूतों की, जो लाल चंद मलिक और अत्ता मलिक के नाम से याद किए जाते हैं।

---

1. डोल जांबाज़ का पैतृक गांव था। इस गांव के कारण आप डोलवाल कहलाये।

"ज़िदगी का जिक्र कहां तक करूं। मेरी ज़िदगी कुछ और नहीं, मेरी ज़िदगी मेरा संगीत। मेरी कविता है। मैंने अपनी आत्मा को गम्भीरता से देखा तो सितार के तारों में अपनी संगीतभरी कविता में अपनी ज़िदगी पाई।

"एक समय था प्रिय मित्र यहां का वातावरण मेरा संगीतकार होना सहन न कर सका। मुझे घृणा भरी दृष्टि दी और बात यहां तक आ पहुंची कि जवानी आंसुओं में डूब गयी।

"मुझे जीवनसंगिनी मिलना कठिन हो गया क्योंकि मैं संगीतकार था। मैं सुरताल की दुनियां में खोया बैठा था। कई निगाहों ने मुझ से शिकायत की और कई आहों ने मुझे संगीत-संसार से दूर ले जाना चाहा। कई भावनाएं मुझ से रूठ बैठीं और कई दिल मुझ से नाराज़ हो उठे। अभिप्राय यह कि मैं परेशान तो था ही, पशेमान होने पर भी मजबूर हुआ। सहमा, कि कहां जा रहा हूं लेकिन ईश्वर ने मेरी और परीक्षा न ली और मैं राह से न भटका। मुझ से संगीत का वातावरण दामन छुड़ा सका न।"

शाहअसरार की दरगाह का भक्त डोलवाल विपरीत परिस्थितियों के बावजूद गीत-संगीत की परम्परा को निभाता रहा। दिलों को भरमाता रहा यह निर्णय करना मुश्किल है कि वह बड़ा गायक था या कवि, संगीतकार या इन्सान। जैसे वह सब यह कुछ उसके एक अकेले व्यक्तित्व में समाहित था। इसलिए इन में से किसी को भी एक दूसरे से पृथक् करना संभव नहीं। डोलवाल काफी भावुक था। आह्लाद या दुःख-दोनों ही उसकी आंखों में आंसू बन कर तैरते। कविता संगीत और गायन उस का पेशा नहीं, बलिक कारोबार उसका शौक था। इसलिए वह प्रायः दोहराता था :

मेरे शौक को मेरा पेशा न समझो।
यह मेरी खुदी को गवारा नहीं है।।

बेचारा डोलवाल अनचाहे प्रशंसकों के हत्थे चढ़ गया। सो इस तथ्य को स्वीकारते हुए स्वर्गीय इशरत किश्तवाड़ी ने 11 मार्च 1961 को "कहकशां" शीर्षक के अन्तर्गत लिखा है :

गुनाम नबी डोलवाल वह संगीतकार और रेडियो आर्टिस्ट है, जिसके बगैर शामेमजलिस का रंग नहीं जमता। यह दूसरी बात है कि दूसरी सुबह डोलवाल से कोई यह भी नहीं पूछता कि भैया, तुम कौन हो? क्या तुम ने नाश्ता किया है? क्या वापिस किश्तवाड़ जाने के लिए तुम्हारे पास किराया है? और तुम्हारी पार्टी में ऐसे सदस्य भी सम्मिलित हैं, जो टेलर मास्टर हैं, मजदूर हैं और जिन

के कन्धों पर उनमें परिवार का दारोमदार है। क्या उन्हें कोई पारिश्रमिक मिला? ऐसे ही प्रश्नों का प्रायः उत्तर न मिलने पर गुलाम नबी डोलवाल संगीतकार के साथ साथ अब कवि भी हो गया है।"

डोलवाल का अंत कश्मीरी संगीत के क्षेत्र में "चलन्त" का भी अंत है। यह कला उसके साथ जवान हुई और उसी के साथ मिट भी गई। जिन लोगों ने उसकी विद्या को अपनाना चाहा उनके साथ "कौआ चला हंस की चाल और अपनी भी भूल गया" वाली बात हो गयी।

'जांबाज़' का एक कविता संग्रह भी प्रकाशित हो चुका है। तदापि अब भी बहुत कुछ अप्रकाशित है:

मत सहल हमें जानो फिरता है फलक बरसों
तब खाक के पर्दे से इन्सान निकलते हैं।

अनु० मनसा राम चंचल

दीनू भाई पन्त

□ डॉ० वीणा गुप्ता

भरावदार मझोला कद, गेहुंई, सौम्य, मुखाकृति। कोट पतलून, ..सिर पर किश्तीनुमा टोपी, हाथ में छड़ी, सुतवां नाक के ऊपर चश्मा और चश्मे के परे दो चमकती हुई छोटी अनुभवी आंखें......

राह चलते हुए सहसा रुक कर आहिस्ता-आहिस्ता टुपुर-टुपुर हर किसी मिलने वाले के अभिवादन में स्नेहपूर्वक जुड़े हुए हाथ, एक...सहज स्वच्छ गम्भीर मुस्कान में सना, एक खास तरह का मिठबोला स्वर......"होर सुनाओ ? राजी ?"......(कहिये, कैसे हैं ?)

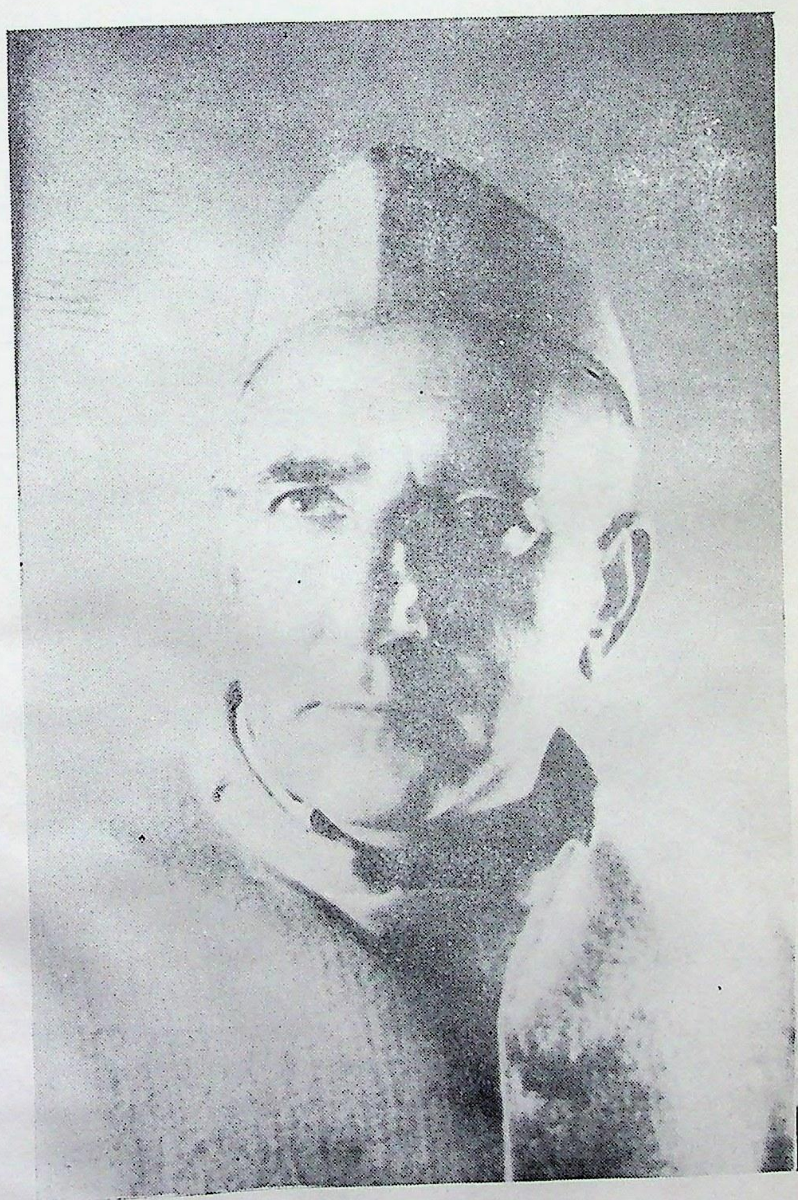
यानि......दीनू भाई पन्त......

'दीनू भाई पन्त' एक ऐसे व्यक्तित्व का नाम है, जिसने सामन्ती शासन की यातनाओं से पीड़ित डुग्गर की गरीब, अनपढ़. भोलीभाली तथा बेखबरी की नींद में सो रही जनता को अपने अधिकारों के प्रति न केवल सचेत ही किया अपितु संघर्ष का उज्जवल मार्ग भी दिखलाया। इनका जन्म 29 वैशाख विक्रमी संवत् 1974 (1 मई 1917 ई०) को ज़िला उधमपुर के पैंथल गांव में हुआ। अपने प्रारम्भिक जीवन के 20-25 वर्ष इन्होंने तंगदस्ती और कटु अनुभवों की मार झेलते व्यतीत किए। पिछली सात-आठ पीढ़ियों से कथावाचन तथा पुरहिताई पर ही निर्भर रहने के कारण इनके घर की आर्थिक स्थिति काफी शिथिल थी। दूसरे घर का वातावरण भी पुरातन पंथी था। रोग-बीमारी की स्थिति में डाक्टरों, वैद्यों के परामर्श के बजाए झाड़-फूंक तथा तन्त्र-मन्त्र का सहारा लिया जाता था। ऐसे वातावरण ने भी इन्हें कहीं अधिक अन्तर्मुखी और उपराम बना दिया।

जहां तक इनके शैक्षिक जीवन का सम्बन्ध है, तीसरी कक्षा तक वे अपने ही गांव में पढ़े। तदुपरांत आगे पढ़ाई के लिये इन्हें बहन के पास रियासी भेज

दिया गया। वहां औपचारिकता के उस माहौल में इन्हें इस बात का अहसास हुआ कि अपने माता-पिता की छत्रछाया सचमुच कैसी अद्‌भुत होती है। खैर चौदह वर्ष की आयु में, जब इनकी मां का देहांत हो गया तो इन्हें रियासी से पढ़ाई छोड़ अपने गांव वापिस आना पड़ा। बड़ी बहन विवाहित थी और बड़ा भाई जम्मू में पढ़ रहा था। इसलिये छोटी आयु में ही जिम्मेदारियों का पहाड़ सर पर आ पड़ा। इन्हें घरेलू कामकाज और अन्य उत्तरदायित्वों के अतिरिक्त घर के पास वाले ठाकुरद्वारे में भी नियमपूर्वक पूजापाठ कर पुजारी की भूमिका भी निभानी पड़ती। इस प्रकार कठोर बन्धनों में जकड़े जीवन से इन्हें उकताहट और घुटन महसूस होने लगी। ऊपर से मां का साया न रहने के कारण भी स्वभाव में विकृति आ गई, जिस से शरारती और टिचकलबाज़ी की वृत्ति इस कदर उभर आई कि शरारत कोई कहीं करता और नाम इन का चढ़ जाता। खैर इन की यह वृत्ति गांव में रामलीला, स्वांग, नकल आदि नौटंकियों में लाभप्रद साबित हुई। मनोरंजन हेतु गांव के खास लोगों की नकल करने में ये काफी सिद्धहस्त थे।

इस प्रकार के वातावरण में दो साल बिताने से ये काफी ऊब चुके थे और अधिक घुटन महसूस करने लगे थे। दूसरी ओर साधु-सन्तों की चमत्कारपूर्ण बातों तथा गांव के लोगों द्वारा उनमें असाधारण रुचि, श्रद्धा और ऊपर से असाधारण आवभगत देखकर दीनू भाई के मन में भी सभी बन्धनों को तोड़ स्वतन्त्रता से जीने तथा मौज उड़ाने की लालसा जागी। फलस्वरूप पहले रामलीला मंडली जो महीना भर इनके गांव पैंथल रहने के बाद झज्झर कोटली चली गई थी, घर से भाग कर उसके साथ जा मिले। आठ-दस दिनों में वहां रह कर राम और सीता के बीच छोटी-छोटी बातों पर लड़ाई-झगड़े होते देख इनका मन वहां से न केवल ऊब ही गया बल्कि वहां से छूट भागने को छटपटाने लगा। इतने में इनके पिता को इनके बारे में भनक पड़ गई तथा वे इन्हें वहां से घर वापिस ले आए, पर इन का मन गांव के वातावरण से उखड़ चुका था अतः एक रोज फिर इस परिवेश की जंजीरें तोड़ हरिद्वार जा निकले। दो वर्षों की अवधि में वहां पंडितों के प्रपंच, साधु-महात्माओं के पाखंड, साधुओं के रूप में पल रहे व्यभिचार, अनैतिकताएं और ढोंग, अनाथालयों एवं धार्मिक संस्थाओं की चारदीवारी के भीतर होने वाली लूट-पाट और ठगबाज़ी पुजारियों की एय्याशी, धर्मभीरू भगतों की नासमझी और सादगी, दुखियारों की पीड़ा और फिर ईश्वर की लाचारी यह सबदेखकर इनकी अन्तरात्मा को झटका-सा लगा और पढ़-लिखकर कुछ कर गुजरने का एहसास जागा। संयोगवश वहां की विनायक मिश्र धर्मशाला में इनकी भेंट जम्मू के दो महाविद्वानों पंडित काका राम और पंडित श्रीचन्द के साथ हुई और जम्मू लौट आने का संयोग बना।



दीनू भाई पंत

जम्मू आकर इन्हें संस्कृत पाठशाला में अभ्यागत विद्यार्थियों के साथ रख लिया गया। किन्तु इनके शरारती व्यंग्य बिना ही स्वभाव और मन्दिर के पंडितों की संकुचित विचारधारा के कारण इन्हें कुछ ही समय में पाठशाला छोड़ कर श्री रणवीर हाई स्कूल में कार्यरत पाठशाला में प्रवेश लेना पड़ा. रहने की व्यवस्था वेद मन्दिर में हुई। 1937-38 ई० में यहां से ही इन्होंने 'प्राज्ञ' की परीक्षा पास की। 1939 ई० में हिन्दी 'भूषण' और 1941 ई० में 'प्रभाकर' की परीक्षाएं भी पास कीं। 'प्रभाकर' की परीक्ष की तैयारी के दौरान इनका परिचय साम्यवादी विचारधारा से हुआ जिससे ये प्रभावित भी हुए। यही दौर था जिसने इनकी विचारधारा को ठोस धरातल प्रदान किया और इनके भीतर अपने अधिकारों तथा स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिये क्रांतिकारी और रचनात्मक प्रतिभा को जागृत किया। फलतः राष्ट्रीय आंदोलन और राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार आंदोलन से प्रभावित होकर सन् 1942-43 ई० में अपने कुछेक मित्रों के सहयोग से हिन्दी साहित्य मण्डल की स्थापना की। और हिन्दी भाषा में **युग चला, कौन तुम, शहीद की अर्थी, पथ पर दीप जलाने वाले** आदि कुछ कविताएं रचीं। जो उन्होंने मण्डल की साहित्यिक गोष्ठियों में पढ़ीं और लोकप्रिय हुईं। इनका हिन्दी नाटक **'स्वर्ग की खोज'** भी काफी चर्चित और लोकप्रिय रहा।

राष्ट्रीय आंदोलन के इसी पवित्र उद्देश्य से सन् 1944 ई० में डोगरी संस्था की स्थापना हुई। इसमें भी इनकी सक्रिय भूमिका रही और इन्होंने मातृभूमि के सच्चे सिपाही होने का प्रत्यक्ष प्रमाण दिया। डोगरी के संस्थापकों में दीनूभाई पन्त का एक अन्यतम स्थान है। यही वह समय था जब देश भर के सभी प्रदेशों में प्रादेशिक भाषा और संस्कृति के पुनर्जागरण की लहर पूरे जोर पर थी। फलस्वरूप डुग्गर प्रदेश में भी डोगरी भाषा और संस्कृति के प्रति जनसाधारण की चेतना जागृत होने लगी। कविगण जो पहले हिन्दी आदि अन्य भाषाओं में साहित्य रचना कर रहे थे राष्ट्रीय भाषा के साथ-साथ मातृभाषा डोगरी में काव्य-धारा को प्रवाह दिया। डोगरी भाषा के ही विकास-वृद्धि से सम्बद्ध संस्था 'डोगरा मण्डल' के प्रणयन में भी इनका विशेष योगदान रहा।

पन्त जी के जीवन का व्यावसायिक एवं आजीविका विषयक पक्ष अति संघर्षमय रहा। शुरू-शुरू में जन्मपत्र, जन्म कुण्डलियां आदि बनाने, ट्यूशन पढ़ाने, प्राइवेट स्कूलों में नौकरी, सम्पादन के छिट-पुट कार्य, रेडियो कश्मीर जम्मू में सक्रिप्ट राइटर वगैरा का कार्य कर गुज़र-बसर करनी पड़ी। फिर बाद में 'रिहेब्लीटेशन डिपार्टमेंट' में स्थायी तौर पर नियुक्ति हुई। अपनी दयानतदारी

और कर्मठता के फलस्वरूप ये 'डिप्टी प्राविंशियल रिहेब्लीटेशन आफिसर' के पद से सेवानिवृत्त हुए।

पन्त जी के कृतित्त्व और व्यक्तित्व दोनों एक-दूसरे के पूरक प्रतीत होते हैं जिन्हें एक-दूसरे से अलग कर कोई भी तस्वीर पूरी नहीं होती। जो कुछ सोचा-ठाना, कार्यान्वित किया उसी को अभिव्यक्ति दी। वाणी तथा लेखनी के द्वारा जो सन्देश दिया उसे पूर्णरूपेण जीवन में अपनाया।

वैसे तो पन्त जी में सृजनात्मक प्रतिभा के लक्षण 1935-36 ई० में ही दिखाई देने लगे थे, जब रघुनाथ मन्दिर की पाठशाला में शिक्षा प्राप्त करते हुए 'विशनोदत्त' नामक अपने एक साथी पर लगभग तीस छंदों की लम्बी काव्य रचना "बावा अल्लो दी कारक" शीर्षक से लिखी थी। यह हास्य और व्यंग्य प्रधान रचना थी जिसमें उस साथी के महापेटूपन को हास्य-रस में सराबोर किया था। ऐसे कितने ही चुटकले और छन्द इन्होंने दूसरे सहपाठियों, मंदिर के पंडितों-पुजारियों को चिढ़ाने हेतु गढ़े रचे थे।

डोगरी की साहित्यिक कृतियों में 'गुतलू', 'मंगू दी छबील', 'वीर गुलाब', 'दादी ते मां' चार काव्य रचनाएं—'नमां ग्रां', 'सरपंच' और 'अयोध्या' तीन नाटक 'मलाटी' शीर्षक का एक एकांकी, भास के संस्कृत नाटक 'प्रतिमा' का डोगरी अनुवाद तथा 'मधुकण' नामक सम्पादित काव्य संकलन उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त **गुजरी, खोह् ल मने दी घुण्डी नाजो, होली, पच्छोताऽ, अराधना, अमर अमुक जीने दी धारा, नमां जुग, एह् कु'न माऊ दा लाल, फल्ला फुल्ल, मिलन बछोड़ा, अनसोधियां बत्तां, इन्कलाब, आदमी दे हत्थ, मक्खनो मखानेओ** आदि कुछ कविताएं और **जे डुग्गर, बन्ने पर जा ओ भाइया, एह् दुनिया, तूं हल वांह् दे मुस्काया** आदि कुछ गीत हैं जो शीराजा डोगरी, साढ़ा साहित्य, प्रातकिरण, नमीं चेतना, जागो-डुग्गर इत्यादि प्रकाशनों में प्रकाशित हैं।

निःसन्देह दीनूभाई पन्त ने पंडित हरदत्त शास्त्री से प्रभावित होकर साहित्य सृजन में प्रवेश किया, फिर भी इन की कविता आधुनिक प्रगतिशील डोगरी कविता की आधारशिला कही जा सकती है। पंडित हरदत्त की कविता में या तो हिन्दु जाति के अतीत-गौरव का गुणगान था या फिर उस जाति में प्रचलित कुरीतियों का वर्णन मात्र था—प्रो० रामनाथ शास्त्री के शब्दों में "अतीत का उत्कर्ष बड़ी अस्पष्ट धारणा है। इसमें न तो अतीत की कोई सीमा-परिधि की कोई नशानदेही है और न ही उत्कर्ष की रूपरेखा ही खुलकर सामने आती है। इसी प्रकार कुरीतियां कह कर जिन कुरीतियों की निन्दा की गई है उनका सम्बन्ध ज्यादातर परम्परा से अलग हो जाने से ही दिखलाया गया

है। समय बदलता है तो उसके साथ लोगों का रहन-सहन और जीवन की मूल्य मर्यादा भी बदलती है।[1] इन बातों को सामाजिक बुराई कहना उपयुक्त नहीं ये तो बदलते युग की कुछ अच्छी-बुरी प्रवृत्तियां ही थीं। इसलिये उनकी कविता समाज-सुधार की दृष्टि से मात्र उपदेशात्मक रूप ही ग्रहण कर सकी। वक्त के तकाज़े के मुताबिक सुर न जगा सकीं। दूसरी ओर दीनू भाई पन्त की कविता समय की दुखती रग थामते हुए जन-जन के हृदय में जा वसी। छुआछूत, ऊंच-नीच की भावना, जातिवाद, सरकारी वेगार, शाह-शाहुकारों की मनमानी धर्म के नाम पर फैले झूठे आडम्बरों, वोसीदा और खोखले रीति-रिवाजों जैसी सामाजिक और राजनैतिक बुराइयें चरमसीमा पर जा पहुंची थीं। समय की मांग थी कि इन बुराइयों के विरुद्ध क्रांतिपूर्ण आंदोलन चलाने के लिये जनता को सावधान किया जाए उसके भीतर अपने अधिकारों के प्रति चेतना जगाई जाए।

दीनूभाई पन्त की तत्कालीन कविता में क्रांतिकारी स्वर मुखरित था। 'गुतलूं' नामक काव्य संग्रह में प्रकाशित "मरने कोला बी मन्दा लोको जीना इस गुलामी दा" कविता जनता को गुलामी वेखबरी, शोषण तथा अत्याचारों की इस वर्वरकारा की जंजीरें तोड़ कर आज़ाद वातावरण में सांस लेने के लिए प्रेरित ही नहीं करती अपितु उत्तेजित भी करती हैं :—

चौरे-पैह्‌र सिरै पर खड़के
कुंडा साह्‌ब सलाभी दा

× × × ×

जिसने कदें वुआल नि खाद्धा
ध्रिग-ध्रिग उस जुआनी दा
मरने कोला बी मन्दा लोको
जीना इस गुलामी दा।

इसी भांति 'उठ्ठ मजूरा जाग कसाना तेरा बेला आया ओ' कविता के द्वारा भी कामगार मेहनतकश किसानों और मज़दूरों को अपने हक-हलाल का फल प्राप्त करने के लिये संघर्ष का आह्वान ही नहीं किया, बलिक परमेश्वर, अल्ला मियां, स्वर्ग-नरक का पाखण्ड रचने वाले मुल्लाओं और पंडितों की जालसाज़ी से सावधान भी किया :—

---

1. त्रिसंगम, सम्पादक रामनाथ शास्त्री—भूमिका

तेरे खून पसीने कन्नै, रहामी ऐश मनांदे ओ।
अल्ला मीयां भला करेगा, तैंकी भुट्ट बनांदे ओ।
सुरग-नरक दे सुखने दस्सी, तेरा मन परचाया ओ,
उट्ठ मजूरा जाग कसाना तेरा वेला आया ओ ॥

सात कविताओं का यह संग्रह "गुतलू" इतना लोकप्रिय हुआ कि पढ़े लिखे और अनपढ़ सभी की वाणी पर छा गया। इस का फारसी और देवनागरी दोनों लिपियों में हज़ारों की संख्या में प्रकाशन हुआ। जहां तक कि पंजाबी भाषा में भी तुरंत इसका अनुवाद हो गया। इसमें संकलित "शैहर पैह्लो-पैह्लगे" कविता शहरी और देहाती जीवन की खूबसूरत अक्कासी है। इसकी भाषा सरल, सादा, आम बोल-चाल की मुहावरेदार तथा हास्य रस की चाशनी में पगी व्यंग्य बेधक है। इसकी सभी प्रतियां हाथों-हाथ बिक गईं। वस्तुत: इस रोचक कविता का दीनू भाई पन्त के अपने जीवन के साथ गहरा सम्बन्ध दीखता है। विशेषकर पैसा कमाने की धुन में गांव से कटड़ा और वैष्णोदेवी के दरबार जाने वाला प्रसंग इस कविता से पूर्णत: स्पष्ट हो जाता है :—

दमैं बैठे जाई तलाऽ, पक्की होई एह् सलाह्
अड़ेआ इक कम्म करचै, इत्थों शैह्र नस्सी चलचै
उत्थै मिं'नत मजूरी करगे, खीसे पैसें कन्नै भरगे
चिट्टे टल्ले लाई चलगे, खुल्ले सैर सपाटे करगे।

'चाचे दूनीचन्दै दा ब्याह्' वृद्ध वर और बाल-वधु के विवाह जैसे असंगतिपूर्ण विवाह की कुरीति पर कटाक्ष और विरोध करने वाली कविता है। विशेषकर ऐसे बूढ़ों पर व्यंग्य है जिनके मुंह में दांत नहीं, सर पर बाल नहीं, आंखों में रौशनी नहीं, शरीर ठुल-ठुल करती हड्डियों का पिंजर और ऊपर से विवाह का चाव। 'लुंड लीडर' कविता राजनैतिक व्यंग्य का जीता-जागता प्रमाण है :—

मंदर मसीत कदें जम्मियै निं दिक्खे जि'नें,
संध्या नमाज इक अक्खर निं सिक्खी जि'नें,
मजहबी कताबें दा निं, नां तक भाखा जि'नें,
उ'नें चुट्टें चूचड़ें दी, पाई दी धमालदारी।

'देसै दा शलैपा' कविता मातृभूमि डुग्गर के अनुपम सौंदर्य का गुणगान करने वाली सुन्दर कविता है।

उन्होंने सन् 1945 ई० में नैशनल कांफ्रेंस के आर्गेनाइज़र के रूप में चनैहनी

जाकर रजवाड़ा शाही के अत्याचारों का सर्वेक्षण किया और राजा की गैर-मारूसी असामियों के शोषण तथा बेगारों के खिलाफ आंदोलन चलाया। सामयिक कविता में ओजपूर्ण भाषा का प्रयोग दीनू भाई पन्त की कविता की विशेषता है।

राजे राज बनाये तुद्द
उच्चे मैह्ल चढ़ाए तुद्द
बड्डे शैह्र बनाए तुद्द
हट्ट बजार सजाए तुद्द
रेलां-ज्हाज चलाए तुद्द
सब किश करदा तेरा जोर
बोल जुआना हल्ला बोल।

इस कविता ने नौतोड़ मेहनत करने वाले जवानों और किसानों को रजवाड़ाशाही के अत्याचारों के खिलाफ जागृत ही नहीं किया अपितु अपना अधिकार छीनने हेतु धावा बोलने की हद तक प्रेरित किया। दोहरी-तिहरी गुलामी से मुक्ति प्राप्त करवाने के उद्देश्य से चनैहनी के राजा के विरुद्ध 'हिजरती जत्थे' का प्रतिनिधित्व उसमें न केवल भाग लेकर किया अपितु उस मार्मिक स्थिति का अपने गीतों द्वारा ऐसा चित्रण किया कि सारा वातावरण विदग्ध हो उठा।

तूं एं जी जालमा अस दूर चले
सोहना देस तज्जी घर-बाह्र तज्जी
दिच्छें निक्का-निक्का परिवार तज्जी
तुद जुल्म कीते मजबूर चले।
तूं एं जी जालमा अस दूर चले।

इसी प्रकार—

"लोक मीह्ने मारदे डोगरें दा राज ऐ,
डोगरें दा हाल मंदा जुड़दा नि साग ऐ।"

गीत भी जनता को अपनी बदहाली का और शासक वर्ग को अपने अत्याचारों का अहसास करवाने वाली सीधी-सीधी बगावत था। "मंगू दी छबील" नामक एक सौ चौबीस छन्दो की लम्बी कविता भी पन्त जी के इन्कलाबी विचारों का ही प्रकटावा थी, जिसमें शाहुकारों और असामियों के रूप में

पूंजीपतियों एवं दलित गरीबों के बीच जीवन मूल्यों की गहरी खाई का चित्रण है। सोहनू सरदालिया (शाहुकार) और नत्थू मनकोटिया (असामी) की पीढ़ी दर पीढ़ी गरीबी और अमीरी में शोषण पर झगड़ा चलता रहता है।

दर-असल दीनू भाई पन्त ने अपने जीवन में इस प्रकार के रावण रूपी शाहुकारों के हाथों कई भोले गरीब लोगों का शोषण होते देखा था जिसे उनका कवि हृदय सहन न कर सका और आग बबूला होकर विद्रोह स्वर की हुंकार दी। जिस का साधारण पाठक अनुमान भी नहीं लगा सकता। हवेली को आग लगा मंगू के लुप्त हो जाने का प्रसंग अति नाटकीय है।

(वीरगुलाव) इनकी सबसे उत्कृष्ट काव्य रचना है, जिसमें सिक्खों और डोगरों के बीच युद्ध की एक घटना का विशद् वर्णन हुआ है। खण्ड काव्य इस रचना का यह ऐतिहासिक कथानक 1809 ई० की घटना है जब गुलाबसिंह की आयु 16 वर्ष थी। लाहौर के राजा रणजीत सिंह ने डोगरा राज्य के कमज़ोर नेतृत्व का मौका पाकर सरदार हुकम सिंह की कमाण्ड में फौजें भेज तवी के पार से जम्मू पर आक्रमण कर दिया। उस कठिन घड़ी में देश की रक्षा हेतु गुलाव सिंह वीर अभिमन्यु का रूप धार युद्ध क्षेत्र में उतर पड़ा और अपने साहस, शौर्य और वीरता से शत्रु को मुंह तोड़ उत्तर दिया। कवि ने इस रचना द्वारा डोगरों की सुलझी हुई नीति और युद्ध युद्ध कला-कौशल सम्बन्धी गौरवगाथा का भावों के तीव्र आवेग, भावानुसार भाषा प्रयोग एवं प्रवाह में गायन किया है :—

डोगरें दे घोड़े दौड़दे जन्दे।
वैरियें दे ठठ त्रोड़दे जन्दे।
धन्न उस माऊ दी कोख सुआई,
जिस एह् जम्मी ऐ जोत सुआई।
डोगरे देसें दा वीर अभिमन्यु,
दुश्मने दे सीस खेढदा खिन्नु।
जिस पासै धूड़ मारदा जन्दा,
वैरियें दे सूढ़ तुआरदा जन्दा।
वीर गुलाव दी वक्खरी टोली,
प्रलय दे दूत खेढदे होली।

घमासान युद्ध का जीता जागता चित्र प्रस्तुत करने वाली, घनघोर गूंज और टंकारों वाली कठोर शब्दावली इस रचना का मुख्य गुण है।

कड़केआ बदल ते त्रुट्टियां धारां,
त्रुट्टी पेइयां पञ्ज सौ तलवारां।

भल्लां ते बरछियां उठ दियां लभन,
सैंकड़े बिजलियां त्रुटदियां लभ्भन।
मारो-मार ललकार सनोयें।
गडिजा-गडिजां गड़ गजदा मारू,
युद्धें ते वीर तूफानें दे तारू।
डोगरे शेर मैदानै ते चाढ़ू,
सवै-सवै पर इक्कला भारू।

पन्त जी की चौथी रचना "दादी ते मां" नामक कविता संकलन है। इस संकलन में प्रकाशित कविताओं में पन्त जी ने जन-साधारण की समस्याओं को जनसाधारण की भाषा में मुखरित कर समाज में प्रगतिवादी परिवर्तन लाने की आवश्यकता महसूस की है। 'इद्धर हो जां उद्धर हो' कविता में उन्होंने ज़ाहिरी तौर पर सफेदपोश किन्तु भीतर से चिन्ताग्रस्त और खस्ताहाल लोगों की विवशता पर बड़े मार्मिक ढंग से कटाक्ष किया है। समाज का मध्यम वर्ग हमेशा ही लोकलाज एवं लोक-अचार रूपी चक्की के दो पाटों के बीच पिसता हुआ अति दयनीय स्थिति में दिन काटता है मगर ऊपर से दिखावे का आवरण ओढ़े रहता है। समाज के इस वर्ग में दफ्तरों के बाबू, व्यापारियों के नौकर, अदालतों के मुनशी, मास्टर मुनीम, हकीम, क्लर्क, छोटे दुकानदार आदि सभी से कवि आग्रह करता है कि वह इस निकम्मे, निठल्ले समाज को बदल दें क्योंकि ऐसे तो मेहनती लोग हमेशा ही दु:खों का रेज़ा बुनते रहेंगे और सुख उनके भाग्य से डरता दूर भागता रहेगा। "कम्म कराऽते रु'टटी दे" कविता भी मेहनती लोगों और मज़दूरी करने वालों द्वारा शासकवर्ग के आगे की गई मांग है। कवि के कहने का ढंग अति तर्कपूर्ण और लहज़ा भी स्वाभाविक है :—

छड़ा जीने दा हक मंगने आं,
झगड़ा नेईं बाफ़र खु'ल्ली दा।
सम्यान करी दे बिन्द सारा,
कुल्ली, जुल्ली ते चु'ल्ली दा।
लेखा टब्बरै दा लाई लै तूं,
भाएं रुक्खी सुक्क मसुक्की दे।
तूं कम्म कराऽते रु'ट्टी दे।।

"कैह्‌दी बसन्त ते कोह्‌दी बसन्त" कविता में भी कवि छोटी सी उपलब्धि पर सन्तुष्ट होकर निश्चिन्त बैठ जाने वाले लोगों को सचेत किया है :—

कैह्‌दी बसन्त ते कोह्‌दी बसन्त,
दुक्खें दा अन्त नां भुक्खें दा अन्त ।

× × ×

होग सरमायादारें दी होग,
जां इ'नें हटिया-आलें दी होग ।

× × ×

साह्‌बें दी होग जां मीमें दी होग,
उन्दियें शैल स्कीमें दी होग ।
अजें नि आई साढ़ी बसन्त
कैह्‌दी बसन्त ते कोह्‌दी बसन्त ?

'अड़ब बैह्‌ड़ा' कविता में कवि इसी निष्कर्ष पर पहुंचता है कि जनता की बदहाली का मुख्य कारण समाज की पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था है, जिसमें पूंजीपति लोग मेहनती गरीबों के खून-पसीने पर मौज मनाते हैं। इस व्यवस्था को बदलने का आह्‌वान करना ही कवि का चरम उद्देश्य है किन्तु इस अड़ियल बैल को काबू करने के लिए लोगों में आपसी एकता की परम आवश्यकता है क्योंकि यह किसी अकेले से काबू आने वाला नहीं है :—

बड़ी जिन्द कड्ढनी ते बड्डा मुंड मारना
इ'न्नै सुखें नेइयों रस्सा जुंगड़े दा स्हारना
इक्कला नि हत्य पायां, साथियें गी सद्दी लै,
मिली जुली घेरा पाना, डंडे-सोटे कड्ढी लै ।

इस संकलन की 'कम्म करना सिक्ख', उट्ठ अड़ेआ उट्ठ ओ', मंजलै गी पुज्जना तां बिना रुके चली चल' आदि कविताएं डोगरी कविता में प्रगतिवाद की धारा का प्रतिनिधित्व करने वाली कविताएं हैं। 'दादी ते मां' कविता मातृ-भाषा और राष्ट्रभाषा को अपना अपना स्थान और सम्मान प्रदान करने वाली कविता है जिसमें हिन्दी को दादी और डोगरी को मां का स्थान देते हुए परस्पर सम्बन्धों की डोरी में पिरोने का सुन्दर प्रयास किया गया है :—

हिन्दी ते डोगरी दा झगड़ा गै कैह्‌दा
दादी ते माऊ दा मकाबला गै कैह्‌दा ?
हिन्दी साढ़ी दादी ऐ ते डोगरी ऐ मां,
दादी थाह्‌र दादी ऐ, ते माऊ थाह्‌र मां ।

'गुजरी' और 'खोह्‌ल मनै दी घुंडी नाजो' ये दो कविताएं विरोधी और क्रान्तिकारी रूझान से कुछ भिन्न, रोमांटिक कविताएं लगती हैं। 'गुजरी' कविता में कवि रूमानियत के साथ-साथ प्रगतिवादी विचारधारा को भी अति सुन्दर रूप में प्रस्तुत करता है। 'गुजरी' एक दूध बेचने वाली भोली भाली और बेजोड़ सौंदर्य की मिसाल बनकर सिर्फ घर की सजावट ही नहीं और न ही वह सोने-चांदी की मुहताज है अपितु कड़े परिश्रम से काम करने वाली रामायणी सीमा रेखाओं को फांद कर रावणों की छाती पर गर्जने वाली, आत्मनिर्भरता एवं निडरता का प्रतीक है।

डोगरी नाटक साहित्य में भी दीनू भाई पन्त का अपना स्थान है। डोगरी का प्रथम नाटक जो प्रकाशित होने का सौभाग्य प्राप्त कर सका जिससे डोगरी रंगमंच की नींव पड़ी—'नमेंयां ग्रां' है। जिसे सर्व श्री रामनाथ शास्त्री, दीनू भाई पन्त और रामकुमार अबरोल ने मिलकर लिखा। यह नाटक सन् 1957 ई० में प्रकाशित हुआ और कई बार जम्मू शहर तथा आस-पास के गांवों में मंच पर प्रस्तुत तथा प्रशंसित हुआ। डोगरी का दूसरा प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय नाटक 'सरपंच' है जिसकी रचना का श्रेय दीनू भाई पन्त को है। यह नाटक 1964 ई० में प्रकाशित हुआ और इसका मुख्य उद्देश्य पंचायती राज्य को लोगों में लोकप्रिय बनाना था। इसकी कथावस्तु बीरपुर गांव के अमर शहीद दाता रणपत के जीवन से सम्बन्धित है जो सत्य और न्याय का साथ देते-देते अपने जीवन तक का बलिदान दे देता है!

दाता रणपत की लोकगाथा डुग्गर की लोकगाथा है जिसके आधार पर दीनू भाई पन्त ने लगभग 15 मुख्य चरित्रों का निर्माण करके नाटक की ऐसी कथा-वस्तु रची कि सारी घटना अति सजीव होकर दर्शकों के समक्ष प्रस्तुत होती है। इस नाटक को न केवल दीनू भाई पन्त की महान कृति रचना कहा जा सकता है अपितु समूचे डोगरी नाट्य साहित्य की शाहकार रचना कहा जाए तो कोई अत्युक्ति नहीं। क्योंकि इस एक ही कृति में सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष भी है, स्नेह-ममता और प्यार के कोमल भाव भी। विवशता-निर्धनता लोगों के प्रति करुणा भी है तो अत्याचारी, लोभी उदण्ड, क्रूर व्यक्तियों के व्यवहार के प्रति घृणा और प्रतिशोध का भाव भी। इन सब से ऊपर अति कठिन और विपरीत परिस्थितियों सत्य और न्याय पर अटल रहने का प्रण जो इस नाटक को एक सामान्य धरातल से ऊपर उठा कर विशेष रचनाओं की कोटि में स्थान दिलाता है। इतना सब होने के बावजूद भी नाटक हास्य और व्यंग्य का पैना चित्रण इसे अति रोचक और लोकप्रिय बनाने में अधिक सहयोगी है।

इसके अनेक मंचन हुए और दर्शकों द्वारा भरपूर प्रशंसित हुआ।

दीनू भाई पन्त का दूसरा पूर्ण नाटक 'अयोध्या' अपने आप में आधुनिक युग को सामाजिक मूल्यों का एक प्रमाण है। 95 पृष्ठों का यह नाटक पांच दृश्यों (अंकों) में विभाजित है जो रंगमंच पर प्रस्तुत भी हुआ है। नाटक की भूमिका में यह स्पष्टीकरण भी दिया हुआ है कि साधारण कलाकारों की मंचन विषयक आवश्यकताओं और समस्याओं के दृष्टि में रखते हुए एक ही सेट पर प्रस्तुत किया जाने वाला लिखा है ताकि उन्हें बार-बार दृश्य परिवर्तन को विकट व्यवस्था में उलझना न पड़े।

नाटक का कथानक रामायण महाकाव्य की पौराणिक कथा पर आधारित होने के बावजूद भी नाटककार ने युग का संकेत समझते हुए रामायण काल की पुरानी, घिसी-पिटी परम्पराओं और मूल्यों की लीक से हटते हुए अपनी कुशल सृजन-शक्ति से मौलिकता का रंग भरने का प्रयास किया है। नाटक की प्रमुख पात्र अथवा नायिका 'कैकेयी' है। युगों से चलती आ रही परम्परागत धारणा के अनुसार कैकेयी को घृणा की दृष्टि से देखा जाता है और उसे स्वार्थी, चालाक, हठीली लोभी और झगड़े का मूल मानते हुए उसके चरित्र को हीन एवं निम्न कोटि का प्रस्तुत किया जाता है किन्तु अयोध्या नाटक में नाटककार ने कैकेयी के चरित्र में उत्कर्ष लाते हुए उसे आधुनिक युग के तकाज़ों पर पूरा उतरने वाली एक समझदार और दूर-द्रष्टा नारी के रूप में चित्रित किया है। उसने नारी के मूल अधिकारों की रक्षा, राष्ट्रहित एवं राष्ट्रविस्तार के अतिरिक्त 'प्राण जाए पर वचन न जाई' की रघुकुल की रीत-मर्यादा की रक्षा हेतु विद्रोह-भावना को स्वीकारा, खलनायिका और कुल द्रोहिणी की तोहमतें सहीं, युवा-आयु में राजसी सुख-ऐश्वर्य त्याग उम्र भर का वैधव्य स्वीकार किया। कथानक में इस प्रकार के परिवर्तन को स्वाभाविक बनाने के लिए ठोस युक्तियों प्रमाणों, चिन्तनपूर्ण तर्क-वितर्क और चुस्त-पैनी भाषा का सहारा लिया गया है। नाटक में कुल मिलाकर 20-2 के करीब पात्र हैं जिनमें से अधिकांश अथवा कैकेयी को छोड़ बाकी सब का चित्रण परम्परागत ढंग से हुआ है।

नाटक की अधिकांश सफलता उस धरातल के सांस्कृतिक मूल्यों के प्रतिनिधित्व में होती है जिस धरातल पर उसका मंचन होता है। रामायण की कथा भले ही अयोध्या, किष्किन्धा और लंका तीन स्थानों की संस्कृतियों पर आधारित है पर दीनू भाई पन्त ने इस तिहरे सम्मिश्रण में से डुग्गर-संस्कृति की छाप उभारने का यत्न किया है।

कैकेयी के सन्दर्भ में अपनी अलग और भिन्न धारणा को प्रस्तुत करने वाला यह एक अच्छा नाटक है जिसे साहित्य अकादमी नई दिल्ली द्वारा 1985 ई० में पुरस्कार द्वारा सम्मानित किया गया।

भास रचित संस्कृत नाटक 'प्रतिमा' का डोगरी अनुवाद भी पन्त जी ने

डोगरी भाषा के सहज प्रवाह में किया है। उसमें भी कैकेयी का चरित्र निर्दोष प्रमाणित किया गया है। शायद 'अयोध्या' नाटक की रचना में पन्त जी को इसी भावना से प्रेरणा मिली हो।

'मलाटी' शीर्षक का एकांकी जो राज्य की अकादमी द्वारा 'डोगरी एकांकी' नामक संकलन में प्रकाशित है ऐतिहासिक एकांकी कहा जा सकता है। इसमें मियां डीडो की वीर गाथा वर्णित है। एकांकी की भाषा पुष्ट और प्रवाहपूर्ण है। 'संझाली' नामक नाटक का उल्लेख भी पन्त जी के 'अदबी सफर' में पढ़ा किन्तु प्रकाशित रूप में उपलब्ध न हो सका।

अन्तत: यह कहना अतिशय न होगा कि डोगरी के जनवादी कवि और नाटकार दीनू भाई पन्त ने जहां डोगरी कविता को जन-जन तक पहुंच ते हुए आधुनिक डोगरी कविता की निरन्तर धारा को रवानी दी सीधी-भोली, सहज स्वभाव की जनता के लिए चित्त-ग्राही नाटक रच कर डुग्गर रंगमंच की परम्परा को भी ठोस धरातल प्रदान किया। स्नेह तरल सद्भाव भरे ऐसे सहज मनुष्य और प्रखर चिंतक की स्मृति शेष को अनंत प्रणाम ! □



Published by the Secretary on behalf of J & K Academy of Art, Culture & Languages, JAMMU.
Printed at Rohini Printers, Kot Kishan Chand, JALANDHAR (Pb.)